ही उन्हें लीलावती की याद हो आई और मन एकाएक खिन्न हो गया। श्यामा की पारखी आंखों से यह छिपा नहीं। ग्रीवा को थोड़ा-सा झुकाती बोली, "हाय, गुसाईं, आप एकाएक बादल में जैसे क्यों आ गए हैं?"

आगे झुक आने से ताजा खिले फूलों की आभा से भरी श्यामा की देह काफी उजागर हो आई थी। रेवाचरन ने चोर नजर डालकर, अपने-आपको संतुलित करने की कोशिश की और श्यामा की ओर एकटक देखते हुए बोले, "बादल की तरह तो, इस वक्त, मुझपर तू झुकी हुई है, श्यामा!"

श्यामा ने अत्यंत मोहक ढंग से अपना पल्लू आर-पार कर लिया, "हाय, आप तो बहुत बदमाश भी हैं!"

"क्यों, श्यामा, सिगरेट तो तू पीती है न?" पूछते हुए रेवाचरन ने सीजर की डिबिया जेब से बाहर निकाली ही थी कि कलात्मक ढंग से ना-ना कहते हुए श्यामा ने उनका आगे बढ़ा हाथ पीछे कर दिया। इस आकस्मिक स्पर्श को, उन्हें लगा, अपने सम्पूर्ण अस्तित्व में अनुभव किया है। रात का लीलावती बहू का अवमानना-भरा व्यवहार और सुबह-सुबह इलावती का सुनाकर, किया व्यंग्य उन्हें फिर एकाएक स्मरण हो आया।

"गुसाईं, आप तो एकाएक अलोप जैसे हो जाते हैं! कहीं घुन तो नहीं लगा है?"

श्यामा का पूछना और खिलखिल हंसना, रेवाचरन पर फूल की पंखुड़ियों की तरह झरा। उनको लगा कि श्यामा की यह मोहकता उन्हें दबोच लेगी। दोपहर का वक्त है। जान-पहचान के लोगों की आवाजाही बनी हुई है। कहीं किसीने इलावती या लीलावती बहूजी तक इतनी-सी भी खबर पहुंचा दी कि डेरेवाली से हंस-बोल रहे थे, तो घर में तनाव और बढ़ेगा।

"अच्छा, तू कहीं चाय वगैरा पी लेना। वैसे तुझे मैंने वीर बहादुर के यहां की बैठक में तो, शायद, सिगरेट पीते देखा था? ले, इसे रख ले।" कहते हुए रेवाचरन ने पांच रुपये का नोट श्यामा की तरफ बढ़ा दिया।

नोट लेते हुए श्यामा ने धीमे से अंगुली से उनकी हथेली को कुरेद दिया, "मेरा बैठना भारी पड़ने लगा होगा, गुसाईं? ठीक भी है, बैठक में

बैठी और घर-बाजार में अकेली डेरेवाली से बतियाने में फर्क होता है। कभी मेरे डेरे की तरफ आएं, तो कुछ अच्छी गजलें सुनाऊं आपको ?"

"गाती तो तू खैर, बहुत सुन्दर है, श्यामा ! मैं कोशिश करूंगा कि आज शाम को ही उधर देवाल की तरफ घूमने निकलूं, तो तेरी तरफ आऊं। तेरा डेरा कहां पर है ?"

"काफी एकान्त में ही जैसा है, गुसांई ! आप किससे पूछते फिरेंगे—मैं खुद ही संध्या को रास्ता देखती रहूंगी आपका। सेवा मानिए।"

'सेवा मानिए,' कहते हुए श्यामा जिस तरह से कुर्सी पर से उठी. उसका जाना काफी देर तक वातावरण में भरा रहा। रेवाचरन ने अनुभव किया कि लीलावती बहू के व्यवहार से महसूस होने वाली अपनी खिन्नता को सहना उन्हें भारी पड़ रहा है। सामान्य मनःस्थिति में वह पहली ही एकान्त भेंट में श्यामा के डेरे पर पहुंचने की बात कह नहीं पाते।

श्यामा के काफी दूर जा चुके होने की प्रतीति में से उन्होंने सत्तार मियां की ओर देखा, दिखाई नहीं दिए।

पार्सल छुड़ाकर, डोटियालों की पीठ पर लदवाकर लाते हुए खीमसिंह को देखकर, रेवाचरन सावधान होने की सी मुद्रा में बाहर तक निकल आए।

"दो पार्सल अभी नहीं पहुंचे हैं, बाबू साहब !" कहते हुए खीमसिंह ने पार्सल उतरवाने शुरू किए, तो रेवाचरन ने अनुभव किया कि उनका मन यह तय करने में लगा हुआ है कि शाम को श्यामा के डेरे की तरफ निकलें, या नहीं।

२

और दिनों बाजार जाती थी श्यामा, तो कहीं पान खाती, कहीं सिगरेट पीती और कहीं चाय पीती सवेरे की गई साझ को लौटती थी। आज रेवाचरन की दुकान से बाहर निकलते ही सीधे घर की दिशा पकड़कर लौट आई थी। रास्ते मे मोतिया धारा के पास नेता बांकेविहारी लाल और ठाकुर कंचनसिंह हौलदार पानवाले की दुकान के पास पान खाते मिल गए थे। दुकान के पास तो अपने बड़प्पन के गरूर में चुप रह गए थे, मगर अगले मोड़ पर पीछे-पीछे आते हुए, खासने-खंखारने लगे थे। और दिनो ऐसे सकेतो पर वह रुक जाती थी। शहर में दिन काटने है, तो शहर के रईस लोगो की दिलजोई करना बहुत जरूरी है। कीचड़ के छीटे वर्दाश्त कर लेना हर डेरेवाली की नियति है। वकील-नेता, बड़े लोग के तो सात खून माफ होते हैं।...मगर आज पाव एक ही नहीं थे। उन लोगों के खासने-खंखारने को अनसुना करके आगे निकल जाना चाहती थी। पलटकर देखने के बाद तो बिना 'सेवा मानिए' कहे, बिना हंसे-बोले ही आगे बढ जाने से उनके नाराज हो जाने की आशका थी। बड़े आदमियों से वैर मोल लेना ठीक नहीं। जिनका पेशा साई-गुसाईं लोगों का दिल बहलाकर रोजी-रोटी जुटाना हो, उनके लिए शहर के मूर्द्धन्यों की अवहेलना करके आगे निकल जाना जोखिम-भरा ही हो सकता है।

अच्छे-खासे लम्बे कद के बावजूद, औरत का चलना आखिर औरत का चलना है। उन दोनों के जूतों की आवाजों से ही श्यामा ने अनुमान लगा लिया था कि फासला कम होता जाता है।

"क्यों, श्यामी, मेनका की जैसी उडी कहां को भग रही है ?" एकदम करीब पहुंचते हुए बांकेविहारी ने कहा, तो अचकचाकर रुक गई, "हाय, मैंने पहचानी ही नहीं, गुसाईं, आप लोगों के कदमों की आवाज !

सेवा मानिए।"

"सेवा तो तू अब बड़े-बड़े पंडितों की करने लगी है!" कहते हुए लाल साहब हंसे, तो श्यामा अवाक् देखती रह गई।

"तुझको अचरज हो रहा होगा कि हाय, मेरी मुट्ठी के दाने लाल साहब ने कैसे गिन लिए? हम नेता लोगों का पेशा ऐसा है कि पूरे हिन्दुस्तान को अपनी नजर में रखना होता है।···लेकिन मैं तुझे दाद देता हूं। आसामी तूने ठीक पकड़ा है। पण्डित रेवाचरन की खर्चनवीनी और नफीसमिजाजी मशहूर है।···शायद, इस हकीकत को भी तू जानती ही होगी कि दोनों मियां-बीवी में पटती नहीं? तू भी तो आखिर डेरेवाली है और हुनरमन्द!···मगर लाल साहब आंख से भी सुनते हैं श्यामा! तेरी तेज कदम चाल हम लोगों को पहचान चुकने के बाद की थी। जरा 'सेवा मानिए' कह ही लेती, तो छोटी नहीं पड़ जाती न? माना कि तेरी लम्बाई ज्यादा है और मैं कद का छोटा हूं, क्यों, ठाकुर साहब?"

अपनी बात पूरी करते हुए, लाल साहब अश्लील ढंग से हंसे, तो वह और ज्यादा खिसिया गई। प्रयत्न करके, आवाज में विनोद का पुट देती बोली, "आप तो बड़े लोग हैं, गुसांई, और बड़े लोगों की गरुड़ पक्षी की आंख होती है। दिखने लायक भी दिखता है, न दिखने लायक भी।··· और छोटा कद बुरा कहां होता है, गुसांई? कपड़ा भी कम लगता है, ले जाने वालों को भी आसानी रहती है।"

श्यामा खिलखिलाई, तो लाल साहब का चेहरा थोड़ा-सा सख्त हो आया।

"डेरेवालियों के कहे-सुने का बुरा नहीं मानते, गुसांई!"

"खैर, मैं तो तुझे दाद देता हूं।"

"और दाद देने को कोई ठौर नहीं मिला, लाल साहब? खैर, शादी तो आपने की ही नहीं। अब इस वक्त चलूं क्या, गुसांई? सेराघाट से ज्ञानी मास्टर लौटते ही होंगे।"

श्यामा जल्दी मुक्त होना चाहती थी। ज्ञानी मास्टर के नाम को कवच की तरह ओढ़ते हुए, उसे फिर रेवाचरन की याद आ गई। यह भी कि रास्ते से गुजरते हुए देख लिया होगा। कौवे की सी आंख तो है नेता-

जी की।

"ग्राज तो तू बहुत जल्दी निवटा देना चाहती है, श्यामी ?" लाल साहब ने फिर छेडना चाहा, "ये ठाकुर साहब साथ में हैं, इनसे पूछ ले चाहे। हम लोग तेरी ही बात करते चले आ रहे थे। महात्मा गाधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन में कुछ 'वन्दे मातरम्' और वैष्णव जन तो तेने कहिए, गाने वाली स्वयंसेविकाओं की जरूरत पडेगी।…मगर तू है कि तुझे हम लोगों की सुनाई ही नहीं देती।"

"सुना ही नहीं, गुसाई, रामजी की कसम। सुनती तो, कुछ पान-सुपारी अपने ही लिए पाती। सूखा कपाल ठहरा, लौनी की डली नहीं ग्रटकी, गुसाई!" कहती श्यामा फिर तेज कदमों से चलने लगी। वह जानती थी, त्रिपुर सुन्दरी के दो-बटिया से नीचे विश्वनाथ की दिशा में वकील साहब की कोठी पडती है। दो-बटिया के पास से अपने-आप दोनों जन गली में उतर जाएंगे।…ठिगने लाल साहब कुछ पीछे ही छूट गए थे, मगर वकील साहब की चाबुक जैसी सडाकेदार ग्रावाज एकदम पीठ से टकराई, "क्यों, वे अप्सरा? एकदम इन्द्रराज के अखाडे को जैसी उड़ती हुई कहा को जा रही है?"

लाचार होकर, कुछ देर और ठहरना पड़ गया। अनजान जैसी बनकर, कान न सुनने के लिए माफी मागी। दो-चार हंसी-ठिठोली की बातें करके वकील साहब के कानून-कायदों की बंदिश से मुक्त टोट झेले और फिर इतवार के दिन मुजरा सुनाने का वचन देकर, ज्यों-त्यों घर की तरफ बढ़ी।

श्यामा का मन यह सोचते-सोचते भावुक हो आया कि औकात से भी बड़ी आखिर जात ही होती है। वकीली में नाम कमा करके हवेली खड़ी कर ली है, तो क्या हो गया। आखिर हुआ तो गाव का मुस्स, लट्ठमूसल खसियाही। वही हाल नेता का है।…एक पण्डित साहब भी हैं। बोलते हैं, तो नई-नई ससुराल आई बहू का जैसा सकोच। आख मिलाओ तो शरम से धरती की तरफ देखने लगते हैं।

दो कोठरियों का छोटा-सा घर है। दक्षिण की ओर किवाड़ वाली दोनों कोठरिया एक सीध में हैं। दोनों ही छोटी। एक कोठरी में भाई

मोती उस्ताद का डेरा और बड़ी वाली कोठरी बैठक की थी, रिहायश भी, नाच-मुजरे के शौकीन लोगों का मजमा वहीं जुड़ता था। रसोई-घर का काम बगल में बनाई टीन की झोंपड़ी देती थी। कमरे में पांव टिकाते ही, उसे सारे घर में चरस और तमाखू-बीड़ी की तीखी दुर्गंध भरी हुई महसूस हुई, जैसे मोती उस्ताद और ज्ञानी मास्टर चरस पीने के बाद अभी-अभी उठकर कमरे से बाहर गए हों। बैठक के कमरे में नाच-मुजरे से कुछ पहले ही मामूली-सी सफाई और सजावट होती थी। इस समय अव्यवस्था थी। एक कोने में ज्ञानी मास्टर की तमाखू और चरस की चिलमें औंधी पड़ी थीं। किसी कोने में पेटीकोट-धोती का जोड़ा लटका हुआ था और दरवाजे की बल्ली पर ठुके बड़े कील में ज्ञानी मास्टर का फटा-पुराना कोट। एक तरफ दीवार से टिकाई हुई चारपाई थी, जिसपर टल्ले डाले लिहाफ-गद्दे एक साफ चादर से ढंके हुए थे।···

हे राम, ऐसी कुठौर आकर कहीं गुसांई घिना गए, तो? फूल में भी खुशबू होती है, तब भंवरा आसन बैठता है। कुछ देर तो इसी असमंजस में रही, बैठक के कमरे में से कूड़ा-करकट निकालकर, सामान संभाले कहां? रसोईघर छोटा-सा। चूल्हा-बरतन और लकड़ियों के अलावा, आटा-दाल-चावल-नून-मसाले के छोटे-बड़े डिब्बों से भरा हुआ धुआंस से काला पड़ा उसमें कपड़े-बिस्तर रखने की कोई गुंजाइश नहीं। फिर ख्याल आया, कि संयोग से मोती उस्ताद और ज्ञानी, दोनों ही आज नहीं हैं। जल्दी-जल्दी पहले मोती उस्ताद वाली कोठरी में आई। उस कोठरी में मोती उस्ताद के शेष चिह्नों के रूप में ठौर-ठौर चरस-तमाखू की जली हुई खार की गिट्टियां और बीड़ी-सिगरेट के टुकड़े भरे थे। तीन-चार साफियों के गंदे चिथड़े चमगादड़ों जैसे लटके थे। कुछ देर कोठरी के सूनेपन में ही डूबी रही। फिर साफियों के चिथड़े दूर फेंककर, उस डोरी में ज्ञानी मास्टर का कोट-पायजामा लटका दिया। साफ-सुथरा गद्दा और दो चादरें छोड़कर, बाकी सारा बिस्तर भी समेटकर वहीं ले आई और दरी जमीन पर बिछाकर, सारा बिस्तर उसी पर लगा गई। झाड़ू लाकर, दरी से बाकी छूटी हुई जगह को बहुत सावधानी से साफ किया।

कमरे को अपने सामर्थ्य-भर साफ-सुथरा बनाकर, श्यामा दुकानों की

तरफ निकल गई। नहाने के लिए उसने संदल साबुन की टिकिया रोदी और अच्छा-सा पाउडर लिया। कमरे में जलाने के लिए अगरबत्ती लेने के बाद, वह पदम ठाकुर की दुकान पर चली आई। चार बीड़े पान इलायची वाले लगाने को कहा, तो पदम ठाकुर ने पूछ लिया, "क्यों, श्यामी, शाम की महफिल है क्या ?"

"हम लोगों की तो रात-दिन महफिल ही महफिल है, गुसाईं!' कहते हुए श्यामा ने खुद अनुभव किया कि उसके कहने में खीझ है।

कमरे में लौटते हुए भी श्यामा को यही लगा कि कुछ है, जो आज लगातार अजनबी की तरह साथ लगा हुआ है।

कमरे में पहुंचकर, उसने शाम के पहनने को कपड़े चुने। और नहाने में आलस तथा ठीक वक्त का न होना उसे खला। तौलिया और बाल्टी को लेकर कमरे के मोरी वाले कोने में निकल गई। दरवाजा बन्द कर लेने का उसे ध्यान नहीं रहा। सिर्फ हाथ-पांव और मुंह ठीक से धो लेने के निश्चय में उसने पेटीकोट और धोती को घुटनों तक समेटा, तो अपनी गोरी, लम्बी और मांसल पिण्डलियों का एकाएक उजागर हो जाना खुद उसे मोहक लगा। वह धीमे-धीमे एक गजल गुनगुनाने लगी और तय किया कि हारमोनियम पर अकेली ही धीमे स्वर में गाएगी—संगत के लिए रमदिया को बुलाने की जरूरत नहीं।

दोपहर की लौटी श्यामा, इस वक्त, दीपक जलाने लग गई थी, मगर मन में असन्तोष की रेखा ज्यों की त्यों खिंची हुई थी। सेराघाट में जैसी कोठरी में रहती थी कृष्णा, ज्ञानी मास्टर के साथ, उससे कहीं बेहतर यहां वाली थी। शादी के वक्त मुश्किल से ग्यारह वर्षों की थी। उस वक्त कौन जानता था, खुद भी नहीं, कि उन्नीस-बीस की उम्र आते-आते वह रजवारों की सन्तति की तरह चिट्टी-गोरी, लम्बे कद की और खूबसूरत निकल आएगी। यह शायद चौबीसवां है। सन्तान हुई नहीं है। जैसे किसी अदृश्य का संकेत हो। बाद के वर्षों में खुद उसने ही एहतियात बरतना शुरू कर दिया और ज्ञानी मास्टर का उदासीन होते जाना न जाने किस बात का प्रतीक था। श्यामा के अप्सराओं के-से तारुण्य और तेवरों के आगे अपनी अपात्रता का या कि इस भय का कि सख्ती से पेश

ग्राने पर उसके साथ छोड़ जाने का।

सिर्फ जिस्म ही नहीं, ग्रावाज में भी सौन्दर्य था। निहायत सामान्य किस्म के ज्ञान के बावजूद, बड़ी-बड़ी बैठकों में रागमयता का सा वातावरण बिखेर देने में श्यामा समर्थ थी। ग्रपनी मोहकता का उसे ज्ञान था, मगर ग्राज, पहली बार, इतने ग्रसन्तोष ग्रौर खीझ से उसका साबका पड़ा था। वह मन ही मन में विचलित हो रही थी कि चांदी की सिल्ली जैसा उजला तो उनका ललाट है ग्रौर देवताग्रों जैसी देह। कैसी पुरुष होने की सी गन्ध बिखर रही थी बातें करते, जैसे संगमरमर की पत्थरी पर कोई चन्दन की सिल्ली घिस रहा हो, धीरे-धीरे वैसा तो व्यवहार था। जैसी कंचन-काया है, वैसा ही सुघर-सुथरा घर-ग्रांगन भी होगा। पुरुष-की जात है। कहीं सचमुच ग्रा ही पहुंचे, तो इस कवाड़-कोठरी में कहां बिठाऊंगी ?

रेवाचरन से उसका वास्ता या तो ग्राज दोपहर की मुलाकात का था या सिर्फ कुछ बैठकों में उपस्थिति का। वह तय नहीं कर पा रही थी कि कदाचित् शाम को ग्रा ही गए, तो उसे उन्हें क्या हैसियत देनी है। एक गुणग्राहक श्रोता की, या डेरेवालियों के नाच-मुजरे के शौकीन पैसे वाले ग्राहक का—या कि सिर्फ एक ऐसे पुरुष का, जिसकी संगति में एक बिजली-सी उसके ग्रस्तित्व में कौंधी थी कि काश, किसी ऐसे ही पुरुष की पत्नी बनने का सौभाग्य उसे मिला होता !

कमरे में ग्रगरबत्ती के धुएं सुगन्ध के कोहरे की तरह भरते जाना श्यामा को बहुत प्रिय लगा। एक बीड़ा पान मुंह में भरकर, यों ही पूर्व-ग्रभ्यास में, वह हारमोनियम पर सुर साधने बैठ गई।

३

गुलाबो यों ही तलब में उस ओर निकल आई थी।

बोली, "हाय, श्यामी, तूने तो आज दीवानाखाना जैसा सजा रखा है। कौन-सी बत्ती जलाई है, बड़ी खुशबू मारती है! मुझे तो आधे रास्ते में में ही महक लग गई थी।"

गुलाबो चारों तरफ कौतूहल-भरी आँखें घुमा ही रही थी कि श्यामा ने थोड़ी सख्त आवाज में कहा, "कैसे आई हो, गुलाबो ?"

गुलाबो चौंकी, जैसे अंधेरे में चलते कोई कंकर पाँव के नीचे आ गया हो।

किसी 'पेंटिंग' के 'पैच' की तरह डेरेवालों की बस्ती मोहल्ले में अलग से पहचानी जा सकती थी। उतरता पक्ष होने से, चन्द्रमा देर में निकलने लगा है। स्लेट पर खड़िया से बनाए गए चिह्नों की तरह, चूने से पुते घरों की कतारों वाला यह मोहल्ला—दुकानों-कमरों में जलती लालटेन तथा दीयों की रोशनी में—एक चिरंतन सामान्यता का अभ्यस्त हो चुका-सा लगता है।

डेरेवालों की बस्ती के किंचित् अंतराल वाले घरों में से गाने-बजाने की आवाजें ठीक वैसे ही निकल रही थीं, जैसे सुबह होने पर पक्षियों के झुण्ड यात्रा पर निकलते हैं। दोपहर जब कृष्णा लौटी थी, मौसम साफ था। शाम जब दुकानों की ओर निकली थी, बादल डेरे पर लौटते लोगों की तरह इकट्ठा जरूर हो रहे थे, लेकिन खामोश थे। इस वक्त, इस थोड़े अंतराल में ही, मौसम एकाएक तेवर बदल चुका था। और सर्दी बढ़ गई थी।

गुलाबो टोहना चाहती थी कि जब बैठक नहीं होती है, तो श्यामा आखिर डेरे और अपने-आपको इतना सँवारकर क्यों बैठी है। जानी

मास्टर तो यहां हैं नहीं। मोती उस्ताद श्यामा के डेरे में महफिल शुरू होते ही दूर निकल जाता है। साजिंदे बिरादरी में से ही जुटते हैं, लेकिन आज तो कहीं, किसीको भी कोई खबर नहीं।

अपने भीतर के नेपथ्य में गुलाबो अपेक्षा कर रही थी कि श्यामा चाय-सिगरेट के लिए पूछेगी, ऐसे में उसका रूख ढंग से पूछ लेना गुलाबो को खला। वह समझ गई कि उसकी उपस्थिति श्यामा को प्रिय नहीं लगी है।

बोली, "बड़े घरों वाले आते दिखते हैं, तुम्हारे यहां।"

श्यामा रेवाचरन की प्रतीक्षा में चली आ रही थी, जैसे निर्वस्त्र जल में खड़ी हो। जामुनी, चौड़े पाट की साड़ी और बेलदार कफ वाली, लम्बी आस्तीन के ब्लाउज में वह खुद किसी जमींदार घराने की बहू जैसी लग रही थी। वह अनुभव कर रही थी कि खोजी आंखों से घूरती-सी गुलाबो का खड़ा रहना उसे बाधा पहुंचा रहा है। वह चाहती थी कि सिर्फ एकांत हो और वह आशा के अंतिम क्षण तक प्रतीक्षा करते रहे। गुलाबो को विदा करने के लिए, उसे अपनी अप्रसन्नता पर आवरण डालना ही पड़ेगा, इस बात का अहसास होते ही श्यामा ने अपने-आपको संतुलित कर लिया, "अरी, महफिल-बैठक जैसी कोई चीजें होतीं, तो क्या तुम लोगों को खबर न होती ?··· और यों ही बड़े घरों के लोग क्या यहां सत्यनारायण की कथा सुनने बैठेंगे ? हो सकता है, एक जन आएं। उनको गाने-नाचने से कोई वास्ता नहीं है। शायद, ऐसे ही थोड़ी देर को···"

अपनी बात वह पूरी नहीं कर सकी। 'गाने-नाचने से वास्ता न होने' के उसके कथन की प्रतिक्रिया में गुलाबो के चेहरे पर जो भाव उभर आया था, श्यामा भीतर ही भीतर थोड़ा खिसिया गई।

"तुम आखिर भेदिये की तरह खड़ी क्यों हो, गुलाबो ? तुम्हें जाड़ा भी नहीं लग रहा है क्या ? किसी काम से आई हो, तो बताओ।"

"हाय, काम क्या होता है ! ···एक घूंट चहा, एक फूंक सिगरेट की तलब में चली आई थी···लेकिन तुम्हारा हंस कहीं दूर उड़ता दिखाई दे रहा है। चलती हूं। जाड़ा लगने लगा था, तभी तलब में चली आई।

हो सकता है, आजकल में बर्फ गिरने लगे। बहुत दिनों से बस्ती में कोई ढंग की महफिल भी नहीं हो रही है। फौजी लोग भी लगता है, जैसे जरमनी-जापान की लडाई में फौद हो गए हैं। शराब का घूट तो सपना हो गया है।"

श्यामा समझ गई कि यहा की मुडी गुलाबो कबीले में मंडराएगी। "तुम रुको," कहती श्यामा आलमारी की ओर बढ़ी और 'सीजर' की डिबिया देती बोली, "इनमें तीन-चार बची होंगी। चाय अब कभी सुबह के वक्त पीना। शराब के लिए तो मास्टर का इंतजार करना होगा तुम्हें।"

गुलाबो का जाना उसे अपनी त्वचा पर अनुभव होता रहा। उसने पाया कि जिस तरह की मनःस्थिति में वह है, इस वक्त, कबीले वालों के बीच का रहना हीनता का अहसास करा रहा है। हालांकि, उसने सदैव ही कोशिश की है कि थोड़ा फासला बनाए रखे, लेकिन लोग फिर भी पानी की तरह बह आते हैं। इस विधवा, निस्संतान और असमय ही प्रौढ़ा गई गुलाबो को देखकर तो और यही लगता है कि ज्ञानी मास्टर की घर वाली तो इसीको होना चाहिए था।

अपने को फिर से प्रतीक्षा में समेटते हुए, वह देली से थोड़ा आगे को झुकी। चुगी वाले मोड़ पर 'लैम्प-पोस्ट' किसी समुद्र के सीमान्त-चिह्न जैसा लग रहा था, जैसेकि कोई अभी-अभी उसमें डूबकर तिरोहित हो जाएगा, क्योंकि एकाएक कोई पानी में से बाहर निकलता-सा इस ओर बढ आएगा। प्रतीक्षा नाम की चीज को उसका साबका जैसे पहली बार उसे इस बात की प्रतीति हुई कि आस-पास के परिवेश को इस तरह तो उसने कभी नहीं देखा था। ऐसे, अपने साथ-साथ इंतजार करते हुए।

इतना वह सोचती आई थी कि शायद, कुछ अंधेरा हो चुकने पर ही इस ओर आएंगे। उसके अनुमान से अब ठीक वह वक्त हो आया था, जिसमें रेवाचरन को उसके लिए प्रकट हो जाना चाहिए। मोड़ से इस ओर आता हर अकेला व्यक्ति रेवाचरन होने लगा था, जो थोड़ी ही देर में कहीं खो जाता था। एकाएक उसे याद आया कि यह भी तो कहा था कि डेरा ढूंढने में दिक्कत होगी, वह खुद लिवा ले जाएगी। ऊनी शाल कधों पर डालकर, चुगी वाले मोड़ तक देख आने का इरादा करते हुए

मास्टर तो यहां हैं नहीं। मोती उस्ताद श्यामा के डेरे में महफिल शुरू होते ही दूर निकल जाता है। साजिंदे बिरादरी में से ही जुटते हैं, लेकिन आज तो कहीं, किसीको भी कोई खबर नहीं।

अपने भीतर के नेपथ्य में गुलाबो अपेक्षा कर रही थी कि श्यामा चाय-सिगरेट के लिए पूछेगी, ऐसे में उसका रूख ढंग से पूछ लेना गुलाबो को खला। वह समझ गई कि उसकी उपस्थिति श्यामा को प्रिय नहीं लगी है।

बोली, "बड़े घरों वाले आते दिखते हैं, तुम्हारे यहां।"

श्यामा रेवाचरन की प्रतीक्षा में चली आ रही थी, जैसे निर्वस्त्र जल में खड़ी हो। जामुनी, चौड़े पाट की साड़ी और बेलदार कफ वाली, लम्बी आस्तीन के ब्लाउज में वह खुद किसी जमींदार घराने की बहू जैसी लग रही थी। वह अनुभव कर रही थी कि खोजी आंखों से घूरती-सी गुलाबो का खड़ा रहना उसे बाधा पहुंचा रहा है। वह चाहती थी कि सिर्फ एकांत हो और वह आशा के अंतिम क्षण तक प्रतीक्षा करते रहे। गुलाबो को विदा करने के लिए, उसे अपनी अप्रसन्नता पर आवरण डालना ही पड़ेगा, इस बात का अहसास होते ही श्यामा ने अपने-आपको संतुलित कर लिया, "अरी, महफिल-बैठक जैसी कोई चीजें होतीं, तो क्या तुम लोगों को खबर न होती ?··· और यों ही बड़े घरों के लोग क्या यहां सत्यनारायण की कथा सुनने बैठेंगे ? हो सकता है, एक जन आएं। उनको गाने-नाचने से कोई वास्ता नहीं है। शायद, ऐसे ही थोड़ी देर को···"

अपनी बात वह पूरी नहीं कर सकी। 'गाने-नाचने से वास्ता न होने' के उसके कथन की प्रतिक्रिया में गुलाबो के चेहरे पर जो भाव उभर आया था, श्यामा भीतर ही भीतर थोड़ा खिसिया गई।

"तुम आखिर भेदिये की तरह खड़ी क्यों हो, गुलाबो ? तुम्हें जाड़ा भी नहीं लग रहा है क्या ? किसी काम से आई हो, तो बताओ।"

"हाय, काम क्या होता है ! ···एक घूंट चहा, एक फूंक सिगरेट की तलब में चली आई थी···लेकिन तुम्हारा हंस कहीं दूर उड़ता दिखाई दे रहा है। चलती हूं। जाड़ा लगने लगा था, तभी तलब में चली आई।

हो सकता है, आजकल में वर्फ गिरने लगे। बहुत दिनों से वस्ती में कोई ढंग की महफिल भी नही हो रही है। फौजी लोग भी लगता है, जैसे जरमनी-जापान की लडाई मे फौद हो गए है। शराब का घूट तो सपना हो गया है।"

श्यामा समझ गई कि यहा को मुडी गुलाबो कबीले में मंडराएगी। "तुम रुको," कहनी श्यामा आलमारी की ओर बढी और 'मीजर' की डिबिया देती बोली, "इसमें तीन-चार बची होगी। चाय अब कभी सुवह के वक्त पीना। शराब के लिए तो मास्टर का इतजार करना होगा तुम्हे।"

गुलाबो का जाना उसे अपनी त्वचा पर अनुभव होता रहा। उसने पाया कि जिस तरह की मन:स्थिति मे वह है, इस वक्त, कबीले वालो के बीच का रहना हीनता का अहसास करा रहा है। हालाकि, उसने सदैव ही कोशिश की है कि थोड़ा फासला बनाए रखे, लेकिन लोग फिर भी पानी की तरह बह आते हैं। इस विधवा, निस्संतान और असमय ही प्रौढा गई गुलाबो को देखकर तो और यही लगता है कि ज्ञानी मास्टर की घर वाली तो इसीको होना चाहिए था।

अपने को फिर से प्रतीक्षा मे समेटते हुए, वह देली मे थोडा आगे को झुकी। चुंगी वाले मोड़ पर 'लैम्प-पोस्ट' किसी समुद्र के सीमान्त-चिह्न जैसा लग रहा था, जैसेकि कोई अभी-अभी उसमें डूबकर तिरोहित हो जाएगा, क्योंकि एकाएक कोई पानी में से बाहर निकलता-सा इस ओर बढ़ आएगा। प्रतीक्षा नाम की चीज को उसका साबका जैसे पहली बार उसे इस बात को प्रतीति हुई कि आस-पास के परिवेश को इस तरह तो उसने कभी नहीं देखा था। ऐसे, अपने साथ-साथ इतजार करते हुए।

इतना वह सोचती आई थी कि शायद, कुछ अधेरा हो चुकने पर ही इस ओर आएगे। उसके अनुमान से अब ठीक वह वक्त हो आया था, जिसमे रेवाचरन को उसके लिए प्रकट हो जाना चाहिए। मोड़ से इस ओर आता हर अकेला व्यक्ति रेवाचरन होने लगा था, जो थोड़ी ही देर मे कही गो जाता था। एकाएक उसे याद आया कि यह भी तो कहा था कि डेरा ढूढ़ने में दिक्कत होगी, वह खुद लिवा ले जाएगी। ऊनी शाल कधों पर डालकर, चुगी वाले मोड़ तक देख आने का इरादा करते हुए

मास्टर तो यहां हैं नहीं। मोती उस्ताद श्यामा के डेरे में महफिल शुरू होते ही दूर निकल जाता है। साजिंदे बिरादरी में से ही जुटते हैं, लेकिन आज तो कहीं, किसीको भी कोई खबर नहीं।

अपने भीतर के नेपथ्य में गुलाबो अपेक्षा कर रही थी कि श्यामा चाय-सिगरेट के लिए पूछेगी, ऐसे में उसका रूख ढंग से पूछ लेना गुलाबो को खला। वह समझ गई कि उसकी उपस्थिति श्यामा को प्रिय नहीं लगी है।

बोली, "बड़े घरों वाले आते दिखते हैं, तुम्हारे यहां।"

श्यामा रेवाचरन की प्रतीक्षा में चली आ रही थी, जैसे निर्वस्त्र जल में खड़ी हो। जामुनी, चौड़े पाट की साड़ी और बेलदार कफ वाली, लम्बी आस्तीन के ब्लाउज में वह खुद किसी जमींदार घराने की बहू जैसी लग रही थी। वह अनुभव कर रही थी कि खोजी आंखों से घूरती-सी गुलाबो का खड़ा रहना उसे बाधा पहुंचा रहा है। वह चाहती थी कि सिर्फ एकांत हो और वह आशा के अंतिम क्षण तक प्रतीक्षा करते रहे। गुलाबो को विदा करने के लिए, उसे अपनी अप्रसन्नता पर आवरण डालना ही पड़ेगा, इन बात का अहसास होते ही श्यामा ने अपने-आपको संतुलित कर लिया, "अरी, महफिल-बैठक जैसी कोई चीजें होतीं, तो क्या तुम लोगों को खबर न होती ?··· और यों ही बड़े घरों के लोग क्या यहां सत्यनारायण की कथा सुनने बैठेंगे ? हो सकता है, एक जन आएं। उनको गाने-नाचने से कोई वास्ता नहीं है। शायद, ऐसे ही थोड़ी देर को···"

अपनी बात वह पूरी नहीं कर सकी। 'गाने-नाचने से वास्ता न होने' के उसके कथन की प्रतिक्रिया में गुलाबो के चेहरे पर जो भाव उभर आया था, श्यामा भीतर ही भीतर थोड़ा खिसिया गई।

"तुम आखिर भेदिये की तरह खड़ी क्यों हो, गुलाबो ? तुम्हें जाड़ा भी नहीं लग रहा है क्या ? किसी काम से आई हो, तो बताओ।"

"हाय, काम क्या होता है ! ···एक घूंट चहा, एक फूंक सिगरेट की तलब में चली आई थी···लेकिन तुम्हारा हंस कहीं दूर उड़ता दिखाई दे रहा है। चलती हूं। जाड़ा लगने लगा था, तभी तलब में चली आई।

हो सकता है, आजकल में बर्फ गिरने लगे। बहुत दिनों से बस्ती में कोई ढंग की महफिल भी नही हो रही है। फौजी लोग भी लगता है, जैसे जरमनी-जापान की लड़ाई में फौद हो गए है। शराब का घूट तो सपना हो गया है।"

श्यामा समझ गई कि यहा की मुडी गुलाबो कबीले में मंडराएगी। "तुम रुको," कहती श्यामा आलमारी की ओर बढ़ी और 'सीजर' की डिबिया देती बोली, "इसमें तीन-चार बची होंगी। चाय अब कभी सुबह के वक्त पीना। शराब के लिए तो मास्टर का इतजार करना होगा तुम्हें।"

गुलाबो का जाना उसे अपनी त्वचा पर अनुभव होता रहा। उसने पाया कि जिस तरह की मनःस्थिति में वह है, इस वक्त, कबीले वालो के बीच का रहना हीनता का अहसास करा रहा है। हालाकि, उसने सदैव ही कोशिश की है कि थोड़ा फासला बनाए रखे, लेकिन लोग फिर भी पानी की तरह बह आते हैं। इस विधवा, निस्संतान और असमय ही प्रौढ़ा गई गुलाबो को देखकर तो और यही लगता है कि ज्ञानी मास्टर की घर वाली तो इसीको होना चाहिए था।

अपने को फिर से प्रतीक्षा में समेटते हुए, वह देली मे थोड़ा आगे को झुकी। चुंगी वाले मोड़ पर 'लैम्प-पोस्ट' किसी समुद्र के सीमान्त-चिह्न जैसा लग रहा था, जैसेकि कोई अभी-अभी उसमे डूबकर तिरोहित हो जाएगा, क्योंकि एकाएक कोई पानी में से बाहर निकलता-सा इस ओर बढ़ आएगा। प्रतीक्षा नाम की चीज को उसका सावका जैसे पहली बार उसे इस बात की प्रतीति हुई कि आस-पास के परिवेश को इस तरह तो उसने कभी नही देखा था। ऐसे, अपने साथ-साथ इंतजार करते हुए।

इतना वह सोचती आई थी कि शायद, कुछ अधेरा हो चुकने पर ही इस ओर आएगे। उसके अनुमान से अब ठीक वह वक्त हो आया था, जिसमे रेवाचरन को उसके लिए प्रकट हो जाना चाहिए। मोड़ से इस ओर आता हर अकेला व्यक्ति रेवाचरन होने लगा था, जो थोड़ी ही देर मे कही खो जाता था। एकाएक उसे याद आया कि यह भी तो कहा था कि डेरा ढूढने मे दिक्कत होगी, वह खुद लिवा ले जाएगी। ऊनी शाल कंधों पर डालकर, चुगी वाले मोड़ तक देख आने का इरादा करते हुए

उसे एकाएक न जाने क्यों यह अहसास हो आया कि अपनी सारी आकुलता के बावजूद वह आखिर कहां, किस हद तक पा सकेगी। सिर्फ उसी हद तक, जहां तक कोई भी डेरेवाली किसी मर्द को पा सकती है। उसे एकाएक ही यह भी याद आया कि आकर्षक दिखने की कोशिश में काफी गहरा सिन्दूर भरा है मांग में। उसे ज्ञानी मास्टर की स्मृति भी हो आई। उसे लगा कि कुछ है, जो उसके अपने सुंदर तथा जवान डेरेवाली होने के दर्प में धूल की तरह बैठ रहा है। दुकानों की तरफ से निकलने की जगह, वह गली की तरफ से आगे निकल गई।

चुंगीवाले मोड़ पर वह पहुंची, तो देखा, सर्दी की मार से सिकुड़ा हुआ-सा जोगा मास्टर, अपने पोते अम्बिया के साथ चला आ रहा है। दस-बीस साल और बीत जाने पर ज्ञानी मास्टर की भी यही सूरत निकल आएगी। कौन जानता है कि तब तक में खुद उसके बच्चे होंगे, या नहीं। हो सकता है, ज्ञानी मास्टर के साथ सावधानी बरतने और परहेज रखने के बावजूद हो जाए?

श्यामा ने अनुभव किया कि मानसिक रूप से इस बात के लिए वह तैयार हो चुकी है कि यदि रेवाचरन आज आएं और रात-भर उसके डेरे पर ही रुकना चाहें, तो उसे आपत्ति नहीं होगी। उसने अनुभव किया कि ज्ञानी मास्टर के साथ अपने वैवाहिक जीवन को बिताने का असंतोष इस समय गाढ़े अंधेरे की तरह उसके भीतर भर आया है।

अंतरिक्ष में जोरों से बिजली कड़की और हवा की एकाएक तेज होती धारा से यह आभास होते ही कि हो सकता है, बारिश शुरू हो जाए—रेवाचरन के आने, न आने की संभावना बराबर दो हिस्सों में बंट गई है, ऐसा उसे लगा।

दोपहर जो चमक उसने उनकी आंखों में देखी थी और विचलित होना—अपने औरत होने के अनुभव में से वह अपेक्षा कर रही थी कि आएंगे। अलबत्ता द्वन्द्व में सिर्फ मौसम डाल रहा था। बारिश होने की आशंका सीधे घर चले जाने का अंदेशा भी बना सकता है और यह गुंजाइश भी कि मौसम के आवरण में उसके डेरे पर उपस्थित रहने की सहूलियत हो जाएगी।

चुगीघर में से गिद्ध की तरह बाहर को घूरते मुशी की जिज्ञासा से बचने के लिए कि 'क्यो, श्यामी, इस वर्फ गिरने के मौसम मे कहा घुमक्कड़ी कर रही है ?' श्यामा वापस मुडने को ही थी कि अगले मोड के पेड़ों पर टार्च की लम्बी रोशनी पडते देख, थोडा-सा और आगे निकल गई। यह अहसास उसे बाद में हुआ कि टार्च की रोशनी किसीको भी हो सकती है।

आकाश खुला होता, तो सर्दी भी कम होती और अब तक चादनी फैल चुकी हुई। शरद् ऋतु के इस अतिम चरण मे वर्फ गिरने की गुजाइश ज्यादा हो गई है।

गुलाबो ललिता के कमरे में चली आई थी। अकेले पडे रहने में डर-सा लग रहा था। अपंग अलोपिया मास्टर एक कोने मे सिमटा पड़ा था। ललिता ने चाय बनाई और गुड़ की छोटी-छोटी डलियों के साथ, दोनो को दी।

"हाय, ठंड मे तो गुड की कटक वाली चहा मे ही मजा है। जाने को अभी थोड़ी ही पहले श्यामी की तरफ निकल गई थी, लेकिन कहा ! वह तो जाजम बिछाकर, नवाब-राजाओं के जैसे इंतजार मे खड़ी थी, चहा क्यों पिलाती ! मीजर की वत्ती थमाकर, विदा कर दिया। लो, हो अलोपी, एक तुम भी पियो। एक-दो रात काटने को बचा लेती हूं। चाहे जो हो, शौकीन और नफीसीपसद तो श्यामी एक ही है। कपड़े पहनने को हम डेरेवालियां में कौन नही पहनती, सीखे कोई उससे। हाय, इस समय तो नर्गिस जैसी लग रही थी !"

"जब यहां, हम लोगों की बस्ती में आई थी—और, गुलाबो दीदी, इस बात को बीते ही कौन दस-पाच बरस हुए हैं। शायद, उस साल रमदिया लला के घर लड़की हुई थी, अब दो-ढाई साल की होगी। पहनावा तो तब कोई खास नहीं था, लेकिन लगती तब भी खूबसूरत थी। नानी मास्टर तो तब भी भालू जैसा ही लगता था। खैर, हम डेरेवालियों में तो खसम का हुलिया कौन देखता है। कम उम्र में शादी हुई, तो वाज डेरेवाली बाद में फूल जैसी खिल आती है, मगर खसम के सिर में

टोप[1] पड़ती गई, तो पड़ती ही जाती है।"

कहते-कहते ही अलोपी मास्टर का ध्यान आया, तो ललिता बोली, "खैर, हमारे ये तो बेचारे परमेश्वर के मारे हुए हैं।"

ऐसा लगा कि अलोपी मास्टर ने बहुत जोर से कश खींचा है और धुएं में अपने चेहरे को ढंकने की कोशिश की है।

"सर्दियों की लम्बी रातें काटनी मुश्किल होती हैं।"

"सो तो तुम ठीक कहती हो ललिता, मगर सबके लिए कठिन नहीं होती हैं। जिसकी रात कटनी मुश्किल होती है, वह कमरे में जाजम बिछाकर, नारंगी साड़ी में दरवाजे पर खड़ी नहीं हो सकती। मुझे तो लगता है, श्यामी ने किसी मोटे आसामी को पटाया हुआ है?"

"खैर, जहां तक तो पटाने का सवाल है, वह खड़े-खड़े चुटकियों में बड़ों-बड़ों को पटा सकती है। हम लोगों से ही बात करने में भी श्यामी के तेवर देखो, हावभाव देखो, तो कैसी 'हां-हूं' बोलती मालूम पड़ती है? उधर मेरा घाट में जाने जैसी रही होगी—शहर में आने के बाद तो एक्ट्रेसों की जैसी कांठी निकल आई है। गाने-नाचने में भी हुनरमंद है। कहीं फिल्मी दुनिया की तरफ निकल गई होती···"

"द, ललिता, अंधियों में की लूली अच्छी वाली मिसाल हुई। हम गरीब डेरेवालियों के बीच में की रानी हुई। चमड़ी अच्छी हुई, दमड़ी भी अच्छी निकाल ली। वहां फिल्मी दुनिया में समुंदर में मछली रे, तेरी कौन अलग से गिनती वाला हिसाब हुआ। दो-चार साल की जवानी है, हमारे देखते-देखते थन नीचे लटक जाएंगे। वो तो कहो पत्थर टूट के चार नहीं हुए हैं अभी तक।"

"सो तो मेरे भी नहीं हुए हैं।"

"लेकिन तेरी न वैसी कमाई ठहरी, ललिता, न वैसी बरकत। हालांकि इन अलोपिया में भी, खैर, जहां तक मैं समझती हूं, सिर्फ बायें हाथ-पैर में ही तो कुछ कमी है। औलाद का तो जहां तक सवाल है, जिसके होने वाले हुए हो जाते हैं—नहीं होने वाले हुए, खसम लाख जवां-

---

1. टोप पड़ना—व्यक्तित्व का क्षय होना।

मर्द हो, उनसे क्या होता है। ज्ञानी मास्टर तो मुंह भाए बकरे जैसा गरदन गिराए रहता है। कमी कुछ उसीमें लगती है।···मगर जहां तक मैं समझती हूं, कहां तक हिफ़ाजत रखेगी।···"

"अब भीतर की तो भगवान ही जानता होगा, गुलाबो दीदी, मगर देखने-सुनने में अभी तक कोई ऐसी बात नहीं आई है कि श्यामी को गैर मर्दों के साथ कुछ वैसी हालतों में देखा गया हो। रहती भी बहुत ठनक से है।"

"द, मुझे अधबूढ़ी को भी 'गुलाबो' ही कहती है, दीदी नहीं लगाया जाता आगे-पीछे उससे।···हाय, जरा कान लगा के सुन तो, यह हारमोनियम बजने की जैसी आवाज तो उधर श्यामी के डेरे से ही आती दिखती है?" श्यामी के डेरे की तरफ मुंह करके बैठी गुलाबो ने अपने-आपमें चौंकते हुए कहा, तो ललिता की आंखें भी उस ओर उठ गईं।

"जहां तक मैं समझ रही हूं, कोई जरा पर्देदार किस्म का आदमी होगा। महफिल-बैठक के पक्ष में नहीं होगा। अकेले तो, खैर, इस वक्त क्या गाने बैठी होगी। श्यामी जरा ध्यान लगाकर सुन तो, गाने की आवाज तो नहीं आ रही है···"

ललिता ने 'नहीं' में सिर हिलाया, तो गुलाबो ने अपने को समेटा। "ठंड तो बहुत पड़ रही है, लेकिन जरा एक झलक देख आती हूं।" कहती उठ खड़ी हुई और अंधेरे में किसी जानवर की तरह गायब होती हुई, थोड़ी ही देर में, फिर ललिता के डेरे में वापस लौट आई, 'द, उसने तो सीजर के एजेण्ट को कमरे में बैठा रखा है। हारमोनियम पर खुद अप्सरा-सी गजल ठोक रही है। वह तो काफी बड़े घर का पढ़ित है, लगता है। श्यामी ने बड़ी ही मछली फसाई है। हो सकता है, गहरी यारी हो चुकी हो। खैर, ज्ञानी मास्टर तो उदासी बाबा है। उसे क्या फर्क पड़ना है। जौन टुकड़ा, अच्छा मिल जाए, उसी में जै है।"

ठंड के कारण गुलाबो, इस वक्त, छोटे-छोटे वाक्य बोल रही थी। ललिता ने अंगीठी को थोड़ा और आगे सरका दिया। बोली, "तुमको तो कांप छूट गई दिखती है। यह घर से बाहर निकलने का मौसम थोड़े हो रहा है। लो, शायद, छींटे भी पड़ने शुरू हो गए। तुमने तो अपने घर में

सिगड़ी जलाई नहीं होगी। मास्टर, थोड़ा नुटुवा ले आए थे। दो रोटी खाती जाना। सबको अपने सिर के अनुमान में मिलता है। "जिस घरनी का जैसा भागा, उसके घर तस बोले कागा' कह रखा है।"

"द, मेरा पेट तो तुम जैसी बिरादरीवालियों से ही चल रहा है, लालता! भगवान तेरा घर भरें। नहीं तो यहां विधवा-लावारिश की फटी-चिरी देखने वाला गोल्ल देवता के अलावा कौन है?" कहते-कहते गुलाबो की आंखें भर आईं।

ललिता धीरज बंधाते बोली, "रोने-धोने से जिन्दगी कहां कटती है। जिन जोगा मास्टर की सारंगी सुनकर गोरे लोग रास्ते में खड़े हो जाते थे—अभी तो, थोड़े ही देर पहले, शहर से भीख मांगकर लौटते दिखाई दिए थे। यह सर्दी काटना मुश्किल ही समझ रही हूं उनका। हम डेरे-वालों को तो गरीबी के ही बीच में बितानी है। घर-घर मिट्टी का चूल्हा है। श्यामी ही कौन-सी हवेली खड़ी कर लेगी। हां, चार दिन चुपड़ी खाने का मौका है। ठीक ही है।"

"ज्ञानी मास्टर का तो जोगियों का सा बाना है। लटकाई सारंगी कंधे में और चल पड़े। घर-घर के टुकड़े खाने की आदत पड़ गई है। श्यामी में रजवारों की औरतों की सी ठस है। अभी-अभी आ रही थी उसके यहां से—मार मीरा बाई का सा कोठा बनाकर खड़ी थी।"

"आजकल किसी बड़े के साथ बताई जाती है।"

श्यामा के घर से हारमोनियम के सुरों के साथ गाने की आवाज ऐसे आई, जैसे छोटे-छोटे पक्षियों का झुण्ड पेड़ों की शाखाओं पर से अभी-अभी हवा में उड़ा हो।

"यार, ठंड से सारे डेरेवालों के यहां सर्दी भरी है। तबले-सारंगी की जोड़ियां बंधी पड़ी होंगी। एक श्यामी के घर में बैरागी के घर-सा तम्बूरा अलाप भर रहा है। ला, लालता, आध गास टुकड़ा मेरे सिर पर डालने वाली है, तो डाल। जाकर, शेप मारूंगी। सर्दियों की रात का काटना सौत का निभाना कहा गया है।" कहती गुलाबो ने अपने शरीर को सिकोड़ लिया।

"श्यामा, तू कुछ आमलेट जैसी कोई चीज नहीं बना सकेगी क्या ? ठंड बहुत है।"

"किसके लिए गुसाईं ?"

"तेरे-मेरे अलावा यहां है ही कौन ? चौंककर क्या करेगी । खाने-पीने में कुछ गुनाह है क्या ? और आमलेट में पानी कहां इस्तेमाल होता है ?"

"हाय, आप तो हंसते क्या हैं, फूल झराते हैं, गुसाईं ! अभी बनाती हूं।" कहती श्यामा हारमोनियम पर से उठ खड़ी हुई। हारमोनियम को बन्द करते वक्त की आवाज जैसे उसके साथ-साथ उठी। रेवाचरन दीवार के साथ पीठ टिकाकर, पांव फैलाकर बैठ गए। सिगड़ी उनके दायें पार्श्व में रखी थी। हाथ फैलाकर, ऊष्मा ग्रहण करते हुए उन्हें लगा कि उनकी आंख निरन्तर श्यामा में लगी हुई है। सिर्फ संकोच है, जो उन्हें बांधे हुए है।

हाथ सेंकते हुए उन्हें लगातार यह प्रतीति होती रही कि यह बाहर पड़ती कड़ाके की सर्दी से अपने को काटते रहना है। उनका जैसे शून्य में ही कहने को मन हुआ कि, 'श्यामा, मैं अपने-आपको काटता हुआ काफी दूर निकल आया हूं।'···लेकिन उन्हें सिर्फ इतना-भर दिखता रहा कि श्यामा नितांत घरेलू औरत के से अंदाज में व्यवस्था में जुटी है। तवा और तश्तरी हाथ में लिए वह अंगीठी के नजदीक आई और बोली कि 'अब अलग से चूल्हा जलाकर क्या करूंगी, गुसाईं, इसी अंगीठी पर सेंक लूं क्या ?' तो रेवाचरन को कुछ नहीं सूझा और उन्होंने धीमे से उसके हाथ को थामकर, अपने समीप खींच लिया और कुछ देर उसे अपनी बांहों में ऐसे भरे रहे चुपचाप, जैसे कोई खोई वस्तु मिल गई हो। श्यामा ने छुड़ाने की चेष्टा की, तो उन्होंने उसका चेहरा अपनी ओर घुमा लिया।

श्यामा कांपते होंठों से बोली, "मुंह जूठा करेंगे, तो जात जाती रहेगी।"

उसका अपने प्रफुल्ल स्त्रीत्व में हंसना उन्हें अपने समूचे जिस्म पर फूल की पखुड़ियों का गिरना-सा लगता रहा।

रात को एक बार श्यामा बाहर आकर झांक गई। चांदनी में बर्फ फसल की तरह उठी पड़ी थी। वापस लौटकर, उसने किसी अजनबी

संसार में भटकते मुसाफिर की तरह सोए पड़े रेवाचरन को देखा। उनके चेहरे पर शिशुओं की सी निस्पृहता थी। अपने-आपमें सम्पूर्ण लगती हुई-सी उनकी आकृति को श्यामा कुछ देर तक यों ही एकटक देखती रही और फिर धीमे से लिहाफ का एक सिरा ऊपर उठाकर, उनके पार्श्व में सो गई।

सुवह जव रेवाचरन उठे, सुवह हो चुकने की प्रतीति के वावजूद कमरे में अंधेरा भरा था। वादलों का रात-भर का समुद्र की तरह का उमड़ना, वर्फ गिर चुकने के वाद भी, अभी रुका नहीं था।

उनके स्पर्श से श्यामा चौंकती हुई-सी जागी, "आपने मुंह-अंधेरे ही उठा देने को कहा था। काफी रात गए मैं उठी तो थी, गुसांई, लेकिन फिर जो सोई हूं, तो आंख नहीं खुली। हाय, आपके मुंह से तो अभी भी गंध आ रही है! ऐसे में कहीं वहूजी देख लेंगी, तो जनेऊ उतार लेंगी। आप जरा हाथ-मुंह धोकर मंजन कर लीजिए। मैं तव तक में चाय वना देती हूं। अभी आधा घंटा तो ऐसा ही मौसम रहेगा। ढलते पक्ष का चन्द्रमा है, इसलिए अभी तक आकाश में है। रात जव मैं वाहर आई थी, चांदनी थी। इस समय तो फिर वादलों का घेरा है। अभी आवा-जाही होने में वक्त लगेगा। यहां से तो आप शायद, सीधे शहर की ओर जाएंगे?"

चाय पीने के वाद, रेवाचरन विदा होने लगे, तो श्यामा ने स्वतः ही उन्हें अपनी वांहों में भरा और अत्यन्त मोहक ढंग से वोली, "आपके साथ तो देवताओं के साथ की जैसी रात वीती है, गुसांई!...अव कव पड़ेंगे पांव इस तरफ?"

"हो सकता है, आज रात भी यहीं आऊं।" कहते हुए ओवरकोट के कालरों को कानों की ऊंचाई तक उठाते हुए पांडेजी के कमरे से वाहर निकले, तो लगा, उनका निकलना सारे शहर ने देख लिया है। वर्फ पर पांव धंसा, तो लगा कि यह सिलसिला जल्दी समाप्त होगा नहीं। शहर की तरफ का वढ़ना सड़क पर अपनी पहचान छोड़ते जाने जैसा लगता रहा। नंदादेवी के पास चाय के होटल में कुछ देर वैठने के इरादे से रुके, तो लगा कि पीठ पर वोझ-सा इकट्ठा हो चुका है।

४

आज सुबह यों ही, लगभग चहलकदमी करती हुई-सी, गुणवती रानीधार वाली सड़क से होती, मोटर स्टेशन तक हो आई थी। आनन्दीमाई धर्मशाला की बड़ी होटल वाली मंजिल से खिड़कियों से बाहर झांकते हुए फौजियों को देखकर, उसे अनजाने ही एक पूर्वापर सम्बन्ध की सी प्रतीति हुई।

किसी विशाल ऊंट की पीठ पर बैठा हुआ-सा यह शहर अपने-आप में एक पूरे संसार की तरह लगता है और सुबह को वाया रानीखेत जाती, तथा शाम को शहर में आती हुई मोटरों को देखकर ही लगता है कि इससे आगे भी कोई दुनिया होगी। अपनी अत्यन्त सीमित-सी आकांक्षाओं और समस्याओं के बीच इस शहर का सारा वातावरण आत्मतृप्ति की सी उदासीनता में समय को काटता रहता है और कुल मिलाकर देखिए, तो सुबह-सुबह चिड़ियों का सा जागने और फिर शाम को वापसी की उड़ान भरने की सी नियमितता में यह शहर एक टापू के से निर्जीपन में डूबा मालूम पड़ता है। रोजी-रोटी की अनिश्चयात्मक के बावजूद अपनी जड़ों पर खड़े होने की प्रतीति होती है। गुणवंती लाख इरादा करती है, मगर पहाड़ छूटता नहीं है। देश जाकर, नये सिरे से जिन्दगी शुरू करने का जोखिम लेने का न बूता अनुभव होता है, न उत्साह। अब फुलिया-बदरिया में से कोई सीमा लांघे, तो लांघे।

काशीपुर नरेश की कोठी के सामने, सड़क के किनारे खड़ी होकर, गुणवंती ने अपने अतीत को स्मरण करने की कोशिश की जब वह सिर्फ बीस-इक्कीस साल की थी और ठीक नन्दादेवी-पूजन के पहले झाड़-फानूसों की जगमगाहट में गुणवंती की बैठक हुई थी और कुंवर साहब ने अपनी अंगूठी उतारकर दी थी। फुलिया के पिता के मरने के साल

गदम्बा पण्डित के यहां गिरो रखी थी, छूटा नहीं।

तब कैसी थी, अब कैसी हो गई है। जैसे बरसों तक आले में पड़-पड़े कोई तस्वीर धुंधली पड़ गई हो। कुंवर साहब का अकेले में का देखना याद आता है—सच्चे खानदानी रईस के देखने की क्या बात है। औरत को ऐसे देखते हैं कि देवी की मूरत देखने की सी चमक और गहराई भर जाती है आंखों में। काश, कि कुंवर साहब जिन्दा होते या उनकी सन्तान ही गुणज्ञ होती और आनन्दी की पहली बैठक···जगमगाते झाड़-फानूसों के बीच, वैसे ही राजसी वातावरण में होती, जिसमें गुणवंती यह भी भूल गई थी कि फुलिया दो साल का हो चुका।

अपूर्व कायाकल्प था वह। वैसा अब कहां !

शिशुन की छोटी-सी पत्ती को तोड़कर, गुणवंती अपने हाथों से मसल दिया और लौट पड़ी। थोड़ा सौदा-सुलफा खरीदकर, बस्ती में वापस लौटी, तो तबले की बद्धी कसता रमदइया दिखाई दे गया।

"जै हिन्द, गुणो दीदी, कहां से सवारी आ रही है ?" कहते हुए रमदइया ने देखा, तो गुणवंती रुक गई। जैसे एकाएक कुछ याद आ गया हो, बोली, "अब गुणवंती भौजी तो तुम्हारे लिए सिर्फ 'जै हिन्द' के काबिल ही रह गई, रामी !"

"तुम तो अभी भी बहुत-सी चीजों के लिए काबिल हो, भौजी !" कहते हुए रामदास हंसा, तो उसका मुंह खोखल-सा हो आया।

गुणवंती को लगा, निचुड़ गया है। कुछ याद करती-सी बोली "देवरा, हमारा फुलिया क्लैसिक के टुकड़े तो अच्छे निकाल लेता है मगर चलती का ठेका उससे अच्छा नहीं बजता। अभी सधा नहीं, लौं पना है। संगत की जगह सोलो बाजी मारने लगता है। चक्करद तिहाइयां लगाता है, और फिर टोकता है कि सम पर नहीं आती है अरे, बेवकूफ, ये कोई उदेशंकर महाराज के दरबार में हुनर दिखान कि मार ले 'कत्तेरे धे-धे-ते-रे, कत्ता-कत्ता-धे-धे-ते-रे,' की परन मारेग छोटी तिहाई पड़े, तो आनन्दी को भी सहूलियत हो। शुरुआती बै है। भनक तो तुम्हें पड़ ही गई होगी ? बैठक में पलटन के लोग वाले हैं। यहां के आला अफसर तो वही सिपाही-लेंसनायक

हौलदार लोग हुए और बकरों के आगे बागेश्री-धनाश्री राग गाने से और जो हुनर मिट्टी में मिलता है। यहां भला कौन गुणवंत बैठा है काशीपुर के राजासाहब की तरह कि गुणवन्ती ने 'वेद रटत, ब्रह्मा रटत, ध्रुवजना प्रह्लाद रटत'''श्रा-श्रा-श्रा-आवत नहीं पार जाको'''श्रो'''वेद''' का आलाप लगाया और उधर कुंवरजी ने 'वा गुणवंती, जीती रह। ध्रुपद के बोल तेरे मुंह से सुनकर, चन्द्रशेखरजी की याद ताजा हो आती है।' कहते हुए पान का बीड़ा आगे बढ़ा दिया।"

कुछ क्षण अतीत में पड़ी रहने के बाद वापस लौटती हुई-सी गुणवंती कहती गई, "इन सिपाही हौलदारों के लिए तो चार-पांच फिलम के उड़नटप्पू किसम के और दो-चार जरा 'तू किले नि आई, घना, डाके कि गाड़ी गा।' या 'सुरमा सलाई वहू छुम,' जैसे ठेठ पहाड़ी मुजरे ज्यादा महफिल जमाने वाले होते हैं। मेरे तो दोनों अभी छोटे हैं, तुम्हारा आधी उमर का अभ्यास है। घर का ही जैसा शुभ कारज समझकर, जरा कुन्तुली छोरी की संगत कर दोगे। कहीं दो-चार मात्रा की घट-बढ़ भी हो गई, तो संभाल लोगे। पिठा-अक्षत जैसा भी पहुंचेगा, सब अपनी ही चेली का काम समझ करके सन्तोष करना पड़ेगा। पलटनियों की फिक्र मुझे नहीं – लेकिन दो-चार अधभर गगरी छलकत जाए वाले अपनी ही बिरादरी के नुक्स निकालेंगे।"

गुणवंती वापस लौट गई, तो रामदास फिर बद्धी कसने में लग गया। तबला कस गया, तो चाय की तलब में घर की ओर पलटा। बाहर धूप भी अच्छी-खासी हो आई, इस बात का अहसास उसे वहां से उठ जाने पर ही हुआ।

"मोहनी, एक घूंट चहा दे देती।" पुकारने के साथ ही उसने चूल्हे में बैठी मोहनी पर नजर पड़ी, तो उसे लगा, न जाने कितने फासले पर बैठी औरत को सम्बोधित कर रहा है। दरवाजा नीचा है। सिर झुका-कर अन्दर जाते हुए दीमकों की खाई हुई लकड़िया घर-गृहस्थी के इतिहास पर बोलती लगती हैं। एक कोने में सामने की जिम्मेदारी पूरी करने-भर को जिन्दा रह गए पिता का गुड़ुरी किए हुए गद्दे की तरह का पड़ा रहना सिर्फ एक इन्तजार की सी उपस्थिति घर के इर्द-गिर्द बनाए

रहता है।

बाहर के खुलेपन में से घर के भीतर पहुंचना अब उतनी राहत भी देता नहीं, जितनी धूप से उठकर छाया में आने पर महसूस हो सकता है।

इधर, एक अरसे से, घर-गृहस्थी का चलाना कुछ ऐसा होता जा रहा है, जैसे हल जोतने में एक बैल के कंधा खींच लेने पर होता है। सारा बोझ एक झटके के साथ पीठ पर आलदा महसूस होता है और दूर-दूर तक कुछ सूझता नहीं है कि भिखमंगेपन की हद तक जा पहुंचने से कौन बचाएगा अब इस घर को। बच्चों के मुंह पर बैठकर भिन-भिनाती मक्खियां आने वाले किसी बुरे वक्त का शगुन बांटती हुई लगती हैं। अपनी याददाश्त पर जोर देने की आदत छूटती जा रही है। यही मोहिनी जब पहली बार इस डेरे में आई थी—घर तो यही था, सदियों पुराना लगता हुआ सा, लेकिन मोहिनी कैसी लगी थी ? जैसे बरसों से चले आ रहे अंधेरे के बीच एकाएक कोई रोशनी लाकर रख दी गई हो।

अब तो रामदास को अपनी घरवाली मोहिनी से खीझ-सी होने लगी है कि यह औरत तो दिन पर दिन बैल जैसी बैठती ही चली जा रही है। पहले थोड़ा-बहुत तब भी जरा तबियत से गा-नाच देती थी, मगर ज्यों-ज्यों बाल-बच्चे हुए हैं, त्यों-त्यों कपिला गाय की जैसी लात छटकाती जाती है और रामदास को कहना पड़ता है कि, 'क्या हो गया, वे मोहना, तुझे ? तू तो अब स्प्रिंग टूटे ग्रामोफोन में चढ़ाए रिकार्ड जैसी घूमती ही नहीं।'

मोहिनी के नाचने-गाने से अड़ियल घोड़ी की तरह पीछे हटते जाने से रामदास के सामने बाल-बच्चों को पालने की समस्या विकट होती जा रही है। पहले सिर्फ तीन जनों का कुनबा था। मां के मुंह में सरस्वती का बास था, सो वह सांई-गुसांइयों की देलियों में मत्था टेक-टेककर अन्न-वस्त्र जुटा लाती थी। मोहिनी स्वभाव की तो तब भी कुछ तीखी ही थी, मगर नाचने-गाने में हिचकती नहीं थी, हंसी-ठिठोली का बुरा नहीं मानती थी। वक्त भी ठीक ही था। दरगुजर में खास कसर नहीं पड़ती थी। अब एकवर्षीया छोरी कुन्ता से लेकर छेदिया-अम्बिया दो-दो

बर्षों के हेर-फेर के हैं। बिना मां-बाप का सुन्दरिया दीदी के नाते का आसरा पकड़कर बैठ गया है।···और पिता जोगा उस्ताद के गट्ठे-पुट्ठे ऐसे उतर गए हैं, कभी-कभार गोठ से छूटे जानवर-सा भागने-जागने चल पड़ना है, तो बाजार-मोहल्लों की सीढ़ियां उतरते-चढ़ते पया-पवा करता, ठौर-ठौर चित्त पड़ा रह जाता है। सहारे को पहले सुन्दरिया जाता था, अब अम्बिया को लगाना पड़ता है, क्योंकि सुन्दरिया कहता है, मेहनत-मजदूरी करूंगा।

रामदास ने लाख कहा, "कमअकल साले, जरा अपनी औकात पर रह। जाने कहा से स्साला किसी भुटके[1] का पैदा हो गया है। खानदानी होता, तो जरा तबले-सारंगी-हारमोनियम मे सुर लगाता। ले मेरा यार कुल्ली-कबाड़ियों के जैसे नीच काम करेगा ? एक ससुरा 'धा-धा-तिरकिट धा-धा-तूना,' का फायदा निकालना परवत हो गया। अरे, स्साले, बोझ ढोना, मजदूरी करना क्या कोई हम लोगों का पेशा है ? हुनरमंद के लिए तो उसकी सारंगी-तबलों की जोड़ी का वजन ही बहुत होता है। हाथ से बोल, गले से सुर निकालकर खाने के गंधर्व पेशे को छोड़कर, अब डूम-डोटियालों के नीच करम करेंगी हमारी औलादें ? आ गया है, यारो, इस गाधर्व कबीले के उजड़ने का समय नजदीक आ गया है।···"

बासी रोटी खाता सुन्दरिया तो जरा सहम गया, मगर मोहिनी मैदान में उतर पड़ी जैसी तैयारी में से बोल उठी, "अरे, रामजी, मैं तो गोल्ल ज्यू[2] के दरबार मे घण्टा चढ़ाऊ, जो यह पलीत गाधर्व कबीला मुसरा कल का उजड़ने वाला, आज उजड़ जाए!···अरे, तुम बहुत नन्दादेवी के थान के नादियों जैसे सुन्दरिया बेचारे पर क्या बिगड़ रहे हो, भरतार ? मैं तो कहतीहूं कि मेरे सुन्दरिया भाई जैसे सारे कबीलों मे पैदा हो जाएं, तो जरा हम रंडियों को सुख के दिन देखने को मिलें।··· सुन्दरिया का सुर तबले-सारंगी मे नहीं लगता है, इसीलिए इस छोरे को छाती से लगाकर रख रही हूं, कि किसी अच्छी जात-औकात का होगा,

---

१. कबंध सम्बन्ध।
२. एक लोक देवता।

तो इस पलीत पेशे को त्यागकर, कहीं इज्जत की रोटी कमा खाएगा। किसी असीलवाज का होगा, तभी मुझे नाचते-जाते देखकर, कहीं दूसरी तरफ चला जाता है, कि दीदी-भाई के रिश्ते की लाज रह जाए। अम्मिया के वावू, संगीत का सुर तभी सुख देता है, जव वह बीच वाजार में टकों के भाव जिस्म नचाने के लिए मजबूर न करे। ऐसे गांधर्व पेशे से तो सुसरा चमार-पेशा ज्यादा उत्तम, जिसमें औरत और वहन के नाचते हुए चूतड़ों को देख-देखकर खसम और भाई चलती का ठेका वजाते हुए 'अं-अं' करते हुए मुंडी हिलावें।"...

गुणवंती न्यौता देकर गई, यह अहसास रामदास के अस्तित्व में धूप की ऊष्मा की तरह भरा था। मोहिनी के टोकने से खीझ में उसके मुख से निकल पड़ा, "तू जो खानदानी पेशे को वेर-वेर लात नहीं मारती, तो मुझे अराई-पराई मिरासिनों का तवलची क्यों वनना पड़ता? अरे, चार सिपाही गुणवंती भौजी की वैठक में आनेवाले हैं, तो तेरी वैठक में आठ हौलदार मौजूद रहते।"

"द! मेरी वैठक में इज्जत-आवरू का घुवां देखने वाले हौलदार हो जावें अपनी महतारी के खसम!...और तुमको तो मैं अव क्या कहूं, अम्मिया के वो ज्यू? शरम नाम की चीज तो तुम लोगों की नलविड़ी[1] के साथ ही झड़ जाती है और वेशर्मों को वात मारो, तो क्या, और लात मारो, तो क्या!" मोहिनी एक अधजली लकड़ी को तड़ाक से तोड़ती वोली, "इतना भी जो कभी-कभी वेशरम-वेहया वनकर के नाच-गा लेती हूं, चुगदों के हाथों की चिगोटियां झेल लेती हूं, तो सिर्फ इसीलिए, कि वालकों का और वूढ़े ससुर का दुख नहीं देखा जाता। जरा तुम्हीं सोचो, लला, कि आज यह पलीत गांधर्व पेशा पकड़कर नहीं वैठे रहते, औरत को रंडी वना करके वीच वाजार में, तो कपास जैसी फूली वाप को थर-थराते हाथ, छोड़ते हुए, देली-देली भीख वटोरने नहीं जाना पड़ता।... आज अम्मिया का हाथ पकड़कर ससुर जाते हैं टुकड़े वीनने को। आने वाले दिनों में अम्मिया-छेदिया के वाल-वच्चों का हाथ पकड़कर तुमको

---

१. नाल, जिसे वच्चे के जन्म के तुरन्त वाद काट दिया जाता है।

और मुझे जाना पड़ेगा भीख मांगने।"

रामदास को लगा, काठ हो रहा है। वह दीवार से पीठ टिकाकर, बैठ गया। मोहिनी चूल्हे में से हटकर, उसके निकट आ गई। बोली, "ऐसे ही नहीं घिना गई मैं इस पेशे से, अम्बिया के बाबू! जब तक बाल-बच्चे नहीं हुए थे, तब तक न उनके बिगड़ने-संभलने और पालने-पोसने का संताप था और न अपना जिस्म ही बोझ लगता था।···बाल-बच्चे हो जाने पर औरत का मन भी बदल जाता है, जिस्म भी। मगर मरद जात को क्या! चार मास चौमासे की बरखा भीगने पर बारहों मास की मिट्टी की परतों से ही पानी नितरता है—पत्थर तो पानी नितारकर टटके हो जाते हैं। तुमने कब देखा मेरा दुख! जब कोई जुआरी-शराबी-सिपाही-होलदार नाच-मुजरे का शौकीन मिल गया, तो तबला-सारंगी का सुर मिला लेने के बाद ही कहा, कि 'हते, गुसाईं लोगों की तबियत खुश करनी है।'···मैं कभी कैसी ही हुई, कभी कैसी ही।··· और···और गुसाईं लोगों की तबियत खुश करने में कितना दूध चुआ, कितनी बार खून—मुझ राँड का दुख किसने देखा? उस दिन नाचती-नाचती जरा थककर, थरथरा जैसी गई 'काहे गुमान करे' पर सम में नहीं आई, तो तुम्हारे सेठ गुसाईं हरगोबिन्द सेठ ने क्या कहा था? कि 'बेताल नाचने वाली नचनिया और गलत चाल चलने वाली घोड़ी को दुम में डाम' धर देना चाहिए।'···अरे, मेरे मरद! लगा होता आठवां भरपूर महीना तेरी घरवाली पारवती सेठानी को भी, और नाचना पड़ता उसे भी किसी तमाशबीनों के सामने—हे राम, मैं भी देखती, कैसे धरा जाता है औरत की दुम में डाम!"

घरवाली की बातों में बिदकने वाला मीरासी और घोड़ा की रखवाली में चौंकने वाला साईस कभी कामयाब नहीं हो सकता, इस परम्परागत मान्यता का अभ्यस्त रामदास सुनता और सीझता रहा कि यह बड़े घरों की बहूरानियों के से तेवरों वाली दिन पर दिन कटखनी होती जा रही है। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि हजारों बरसों से जो

१. गरम लोहे या तांबे के सिक्के से दागना।

परम्परागत पेशा पेट पालने का चला आ रहा है, इससे विद्रोह करने के बाद आखिर जीने के लिए और क्या व्यवस्था हो सकेगी? प्रश्न सिर्फ आर्थिक-व्यवस्था-भर का भी तो नहीं। एक सांचे में ढले हुए मानसिक संस्कारों से मुक्त होकर, नये सिरे से रोजी-रोटी का सिलसिला बना सकने की गुंजाइश उसे दिखती नहीं। जमीन नहीं, जिससे अन्न उपजे, तो कुनबा पले। पूंजी नहीं, जिससे कुछ व्यवसाय किया जा सके। ऊंचा कुल और शिक्षा-दीक्षा नहीं, सरकारी नौकरी करके गुजर करे।···और तिस-पर यह मुट्ठी-भर का शहर!

किसी तरह शब्द जुटाकर, बोला, "अरे, बन जाने वाली गाय ने बिना रोज चरे अपना पेट कैसे भरना, मोहना? और बंजारे-मिरासी डेरेदारों के पास जमीन-जायदाद और रकम के नाम पर यही सारंगी-तबले की जोड़ी और एक इलम इसी को छोड़ दें, तो स्साले छै-छै उदर कैसे भरें? तू बहुत पढ़किड़ी की तरह प्वांक्कि-प्वांक्कि पादती मत फिरा कर, यार! जरा औकात पर रहा कर, जरा औकात पर। आकाश की चील ने छीनकर, आंगन की चिड़िया ने बीनकर ही पेट पालना होता है। जिस गांधर्व पेशे को हमारे पुरखों ने कायम किया और हजारों बरसों तक ऐयाशी कर गए, आजल्ले मेरी यार कठुली मीरासिनियां उसी पेशे को लात मारने को तैयार खड़ी हैं। अरे यारो, दरअसल चीज यह हो गई है, कि आजकल की मीरासिनियों में सत्त-धरम नहीं रह गया। पहले तो ये होता था, कि ऐठकी-बैठकी में लाख पराई संगत करें, मगर संतान अपने ही वंश-कबीले की पैदा होती थी।···मगर आजकल की औलादें दोगल्ली सारंगी-तबले की जोड़ी को तो मारें लात और कुली-गीरी करने को तैयार।···सुंदरिया स्साले से जरा पूछ तो सही कि दिन-भर हल जोतकर, लकड़ी बेचकर या पत्थर-बल्ली ढो-ढोकर जितना कुल्ली लोग कमाते हैं, उतना तो हुनरमंद मीरासी सांई-गुसांई लोगों से इनाम-बख्शीश में ही झाड़ ले। बस, जरा इलम का सच्चा होना चाहिए।···"

अपनी तरफ से इतना कुछ एक रौ में कह जाने के बाद, कुछ संतोष की सांस लेकर, रमदिया सिगरेट भरने लगा कि औरत की जात इतना समझाए से थोड़ा तो समझेगी, मगर मोहिनी ने फिर पतंग जैसी काटकर

रख दी, "मुझको उपदेश तो बहुत देते हो, यार ! कभी जरा चरस की चिलम की चमतरंग से नीचे उतरकर, अपनी असलियत को भी तो टटोलकर देखो ? हजारों सालों से चलते तुम्हारे गाधर्व पेशे से कितने पेशेवरों का कल्याण हुआ ? वही कंगाली की कगाली, वही कपाल का कपाल हाथ। वही उतरे हुए कपड़ों की पोशाक और वही मांगी हुई भीख का भोजन !·· मुझको नाम रख रहे हो, अम्बिया के बाबू, मगर पहले तो हर मीरासिन में खूबसूरती और जवानी नहीं होती और हुई भी तो ज्यादा टिकती नहीं। चौमासे के पानी जैसा जोबन एक दिन आखिर उतर ही जाता है। घना-चना की जैसी उर्वशी-मेनका की जोड़ी आज तक हम लोगों के डेरों-कबीलों में चमकी नहीं होगी न ? न वैसा जोबन, न वैसा इलम—मगर बुढ़ापा उन दोनों का भी जैसा कटा, तुमने भी देखा, हमने भी देखा। वही राह चलतों से चा-सिगरेट मागने की नौबत आई। इतना तो मैं भी जानती हू, यार, कि हम न तो जमींदार, न ठेकेदार-दुकानदार। इसी गरीबी में दिन काटने हैं।···मगर एक रोटी मेहनत-मजदूरी की होती है। कमाने में देह टूटती है। पसीना नितरता है।···एक रोटी स्साली इस पलीत पेशे से भी जरूर मिलती है, जिसमें न औरत की इज्जत-आबरू सलामत, न मरद का गुमान और भरम। हल जोतने वालों और बोझ ढोने वालों की औरतों की तरह हम डेरे-वालियों को अपने हाड़-गोड़ नहीं चलाने पड़ते, ई तो यह सही बात है, यार ! मगर जितना ही जिसम को आराम मिलता है, उतनी ही फजीहत भी है। सयाने भाई-बेटों और नाते-रिश्ते के लोगों और खसम के सामने जिस समय लाज-शरम बेचकर, रंडियों की तरह नाचना पड़ता है, उस समय तो यही लगता है, कि यार मोहना, ऐसी कमाई का अन्न खाने से तो गू खाना बेहतर है। और भैया, सुदरिया के बहानेल्ले जागेसर-बागेसर घुमा-फिराकर क्यों कहते हो ? सीधे कहो कि मेरी मां असल डेरेवाली नहीं थी, घर-गृहस्थी वाली थी।"

मरद की जात और कितना सहती ? गुस्से से बौखलाता रमदिया वहां से उठा, सामने ललिता भौजी के कमरे में चला गया, "तो-तो··· अरी तिगुली, कल से तू अन्न ही खाया कर, मैं ससुरा अपने-आप

खाऊंगा गू ! मैं तो वही खानदानी पेशा करूंगा, जो मेरे बाप-दादे करते आए। नहीं चाहिए मुझको तेरी टांगों से निकले हुए कुत्ते भी। कौन जानता है, साले कौन-सी औकात के हैं।···आज से तू मेरी औरत नहीं और कल से मैं तेरा खसम नहीं। जा, दे दिया तलाक। आ गया तेरे तावे में अब, तो जोगा मीरासी की नहीं, किसी खसिये-डुमड़े की औलाद कह देना।"

"तो, भैया, अकेले मुर्गी के चूजे जैसे क्यों घुस रहे हो, अपनी ललता भौजी के बारह पाट घाघर में ? लो, भीतर लावारिस पड़े अपने बाप जोगा उस्ताद को भी लेते जाओ ना ? अपने हलाल के या हराम के पैदा किए हुओं को या मैं खुद देख लूंगी—या हाट की मैया देख लेगी !"

ललिता कुरती-पेटीकोट में बैठी बाल सुलझा रही थी। अभी-अभी नहाकर उठी थी। एक नजर उसने कमरे के भीतर जाकर, वापस देली में बैठते रमदिया को देखा। बालों को समेटकर, पीठ पर फेंका और परों पर का पानी झाड़ती हुई-सी बोली, "मर्दों के पीछे इस तरह कल्लो जमादारिन का जैसा झाड़ लेकर नहीं दौड़ते, बहना। अरे, चार कदम चलकर इधर आ गए हैं, तो कौन तेरी सौत के घर चले गए, अपने बड़े भैया के घर ही तो आए हैं। अभी एक घुट्टुक चहा पिलाकर, तेरे ही पास भेजती हूं।"

ललिता अपने स्वभाव के अनुसार बातों को टालकर, बढ़ने से रोकना चाहती थी, लेकिन मोहिनी का उसका इस वक्त का मीठा स्वर भाया नहीं। आवाज को नोकदार बनाकर बोली, "क्यों, एक ही घुट्टुक क्यों पिलाओगी, ललिता दिदी—पूरी तरह पिन्हवा कर भेजो ना ? गला भी इनका सवेरे से अखरा हुआ है। मेरा तो बच्चों को ही पूरा नहीं पड़ता।"

ललिता ने एक बार चोर नजर से अपने स्थूल स्तनों को देखा। मन तो हुआ कि चहेट ले, मगर फिर धीरे से मुस्करा पड़ी, "जैसा तू चाहती है, वैसा ही कर दूंगी।"

मोहिनी ललिता के ठंडेपन से ढीली पड़ गई। भीतर से जोगा की पुकार भी सुनाई पड़ी, जैसे कोई डलिया में पड़ा बच्चा भूख में चिल्लाया हो। मोहिनी एक नजर तीर की तरह रमदिया पर फेंकती हुई भीतर

चली गई।

अभी बैसाख नहीं चढ़ा था। आकाश में कहीं-कहीं बादल चीलों की तरह घूम रहे थे। हवा के रुख में यह भापना कठिन था कि किस तरफ से आ रही है। ऊपर ठाठ बंगले की तरफ से होती हुई या कागार की ओर से। कभी-कभी नीचे दौल-पुरमों की गहरी घाटी में से नदी में पंचोला नहाने के बाद गाव को वापस लौटती औरतों की तरह भी आती है। शहर का यह हिस्सा ग्रीष्म ऋतु में भी हवा की ताजगी से भरा रहता है। मुख्य शहर से अपेक्षाकृत ऊंचाई में होने के कारण हवा में एक धीमी-सी ठंडक हमेशा बनी रहती है।

रमदिया उठा, तब दोपहर ढलने के बाद का मौसम बस्ती पर फूस की छत की तरह पड़ गया था।

ललिता अभी भी सोई पड़ी थी। रमदिया ने एक बार गौर से पूरे कमरे को देखा। दोपहर की भात की जूठी थाली चूल्हे के एक किनारे ज्यों की त्यों पड़ी थी।

लगातार कई घंटे ललिता के कमरे में रह जाने के बाद, अब रमदिया महसूस कर रहा था कि मोहिनी से लड़ने की बिसात वह खो चुका है। किसी बहाने वह अपने डेरे में वापस लौटना चाहता था, क्योंकि ललिता बता चुकी थी कि अलोपिया, रमदिया का सौतेला बड़ा भाई, शाम तक में वापस लौटेगा। रमदिया के लिए यह अहसास बोझ बन गया था कि अलोपिया अपनी लूली टाग को पसारकर बैठेगा और घूर-घूरकर उसे देखता रहेगा।

जैसे संयोग कहीं हवा में से उदित होगा, कुछ इस तरह की मुद्रा में वह थोड़ा-सा और बाहर निकल आया। देखा, मोहिनी कमरे के आगे बैठी बाल संवार रही है और बच्चे नीचे सड़क में कंचा-गोली खेलने निकल गए हैं।

रमदिया ने धीरे से पायजामा के नेफे में से चरस की पुड़िया निकाली। अधजली सिगरेट के तमाखू में मिलाया। बड़ी देर तक अपने-आपमें खोया हुआ-सा पीता रहा। मोहिनी ने एकाध बार जिस तरह इधर-उधर नजर डालने की सी सावधानी में से उसे देखा, समझ गया,

कि चरस की सोंधी-सोंधी गंध पा गई है। वह इस प्रतीक्षा में था अब कि मोहिनी जरा-सा कुछ कहे, तो—भले ही उसे डांटने के बहाने—धीरे-धीरे अपने डेरे की ओर निकल पड़े। मुश्किल से पन्द्रह-बीस गज का फासला था और वह भी आमने-सामने का, मगर अजगर की तरह लेटा हुआ था।

मोहिनी जैसे चुप साध गई थी। पीठ को पूरी तरह इस ओर कर लिया था उसने। तंग आकर, रमदिया अपनी ओर से संवाद शुरू करना ही चाहता था कि तब तक में ललिता बाहर निकल आई और लोटे में पानी लेकर, रमदिया के एक किनारे बैठते हुए मुंह धोने लगी।

मोहिनी ऐसे चौंकी, जैसे ललिता के उछाले पानी के छींटे उसकी पीठ पर जाके गिरे हों।

"क्यों वे, मोहना, अभी तक पीठ ही [illegible] रही है क्या रमदिया लला को?"

बर्दाश्त करो, या काला बरेवा तोडो, ढासी[1] पर रखो। अपने बच्चों के बाप को ऐसे नहीं दुतकारना होता कि कुत्ता भी सोचे कि लौटूं, न लौटूं। पगली, लोहे की बाल्टी बावड़ी में डाली जाती है ना, तो पीछे में दस गज लम्बी रस्सी बांध के डाली जाती है।"

"अब हो गया हां, लालता दिदी, तुम भी अघाए हुए ठड्डे की तरह मूँछें मठारती मत बोलो।" मोहिनी पलटी और पहली बार उसके चेहरे पर एक क्षण को हंसी चमकी। तुरन्त ही सख्त पड़ती बोली, "तुम लोगों की तो हमेशा यही मिसाल होती है कि खाने को मन ललचावे, तो शिकारी कौवे को तीतर बतावे! ऐसी खाने वाली, तुम तभी क्यों ना आ गईं इस तरफ कि ले ये, मोहना, सभाल अपने असल को? और, दिदी, खसम संभालने का शऊर मुझे क्या सिखाओगी—औरत सभालने का शऊर अपने देवर को सिखाओ।"

"हे राम, कैसा बोदा मरद लिखा मेरी कपाली में भी! ज्यों-ज्यों आंच दो, त्यों-त्यों और ठंडा पड़ने वाला लोहा एक यही देखा। मैंने तो आने वाले दिनों की दुर्गति की लेखा सामने रख दिया कि लो, मरद जात का है, कोई बात लगे।···मगर, पंख भीगे मुसिया चील जैसी भौजी की देली पर हाथ-पाव पसारकर बैठ गया।"···चरस-भरी सिगरेट का धुआं आसमान की तरफ छोड़ते हुए, रमदिया स्थिति के सभल चुकने के से इतमीनान में से बोला, "लालता भौजी, एक तेरा चंदरिया भी था। हमारे अलोपिया ददा के घर बैठने में पहले का असली दूध का निकल गया, तो द्रुत लय में ना-धिन्-धिन्ना के ऐसे टुकड़े लगाता था, तबियत खुश हो जाती थी। 'दिन्-दिन-तेटे-तेटे, तेरे दिन् ना-ना तेरे' को ऐसे उठाता था, जैसे कबूतरबाजी कर रहा हो। अपने अम्बिया खाने के हाथ को सारंगी-तबले पर रखता हूं, तो बिच्छू का काटा हुआ जैसा अपनी महतारी की छाती से चिपट जाता है।···मैं भी असली मीरासी हूं, तो ऐसा ही आसमान की तरफ को उड़ता हुआ धुआ इन डूमणी और यहां तक कि—इसकी नालायक औलादों का भी देखूंगा।" होठों को समेटकर तेजी से

---

1. सफेद पहाड़ी पत्थर, जो प्रायः सोड़ानुमा होता है।

चरस की सोंधी-सोंधी गंध पा गई है। वह इस प्रतीक्षा में था अब मोहिनी जरा-सा कुछ कहे, तो—भले ही उसे डांटने के बहाने—धीरे-धीरे अपने डेरे की ओर निकल पड़े। मुश्किल से पन्द्रह-बीस गज का फासला था और वह भी आमने-सामने का, मगर अजगर की तरह लेटा हुआ था।

मोहिनी जैसे चुप साध गई थी। पीठ को पूरी तरह इस ओर कर लिया था उसने। तंग आकर, रमदिया अपनी ओर से संवाद शुरू करना ही चाहता था कि तब तक में ललिता बाहर निकल आई और लोटे में पानी लेकर, रमदिया के एक किनारे बैठते हुए मुंह धोने लगी।

मोहिनी ऐसे चौंकी, जैसे ललिता के उछाले पानी के छींटे उसकी पीठ पर जाके गिरे हों।

"क्यों बे, मोहना, अभी तक पीठ ही दिखा रही है क्या रमदिया लला को?"

"क्यों, अगाड़ी तुम्हारी पूरी नहीं पड़ी क्या?"

"असल की सूद की में बड़ा फर्क होता है, बहना!···और फिर तू वहम की मारी क्यों बैठी है। अभी तक नहीं उतरा तेरा गुस्सा क्या?"

"मेरी चिंता मती करो, भैया! मैं तो आंख-ओट, परवत-ओट समझती हूं।" मोहिनी की आवाज में दर्प भरा था। लालता मुंह पोंछती उठी और मोहिनी के पास जा बैठी। मोहिनी जब तक में फैसला करती, लालता ने उसके बालों को अपनी मुट्ठी में कर लिया, "तीन बच्चों की मां बन गई, लटी संवारने का शऊर नहीं आया।"

चरस-भरी सिगरेट पीता रमदिया अपने खेलते-कूदते हुए बच्चों को देखता, बोला, "देख लेना, बे यार लालता भौजी! ये स्साले कभी तरक्की नहीं करेंगे। कुल्लीगीरी-कभाड़ीगीरी करके खानदान का नाम डुबाएंगे।"···

मोहिनी पलटकर कुछ उलटा-सीधा जवाब दे, इससे पहले ही ललिता ने धीमे से बालों को मुट्ठी में कस लिया, "मोहना, बच्चे पैदा करने का शऊर तो हर औरत को कुदरत देती है—खसम संभालने का शऊर खुद सीखना होता है। गिरस्थी का तो ये है, बहना, कि या तो कमर प

ही वाले होंगे। पदम ठाकुर ठीक ही तो कहते हैं कि मीरासियों के डेरे में जब तक दिन में एक न एक वक्त तबले नहीं बजेंगे, तो गंधर्वों की जात कैसे पहचानी जाएगी !···ठाकुर साहब, आप भी आ जाना हो, मौका लगे तो शायद है, दो-चार भले लोग आएं। ललता, तू भी इतना मीठा मत घोल दिया कर कि पेट में कीड़े पड़ने लगें।"

गुणवंती पान मुंह में भरती, दोनों की ओर चली आई, "ले रे मोहना, तू भी पान चबा और गुस्सा-गुस्सा थूक साले को। अरे आनन्दी जैसे मेरी बेटी, वैसी तुम लोगों की।"

गुणवंती का कहना ललता पर तो फलित हुआ, लेकिन मोहिनी का तेवर ज्यों का त्यों था।

रमदिया चुपचाप उठकर, अपने कमरे में आया और चादर में बंधी हुई तबले की जोड़ी उठाकर जाने लगा, तो मोहिनी ने सारंगी भी पकड़ा दी, "अपना पूरा ही तामझाम लेते जाओ। मेरा हिया तो तालाब जैसा भर गया आज। मेरा भी तिरिया-हठ एक ठहरा अम्बिया के बाबू ! पाल सकी, तो मेहनत-मजदूरी करके पाल लूंगी अपने छोरों को। नहीं पाल सकी, तो गले में पत्थर बांधकर रामगंगा में डुबो दूंगी।"

ललता ने सारंगी थाम ली, "अरे, मोहना, न मिले तुझको कभी खसम का सुख।···बड़ी-बूढ़ियों की तो कुछ शरम कर। गुणो दिदी भी क्या कहेंगी !"

अन्दर कोने में पड़ा जोगा उस्ताद फिर कुछ चिल्लाने लगा था। ललता सारंगी लिए भीतर चली गई और रमदिया भी डेरे की तरफ चल पड़ा। मोहिनी के कुछ कहने से पहले ही, ललिता ने बोरा लाकर बिछा दिया, "गुणो दिदी बैठो हो। और लला, तुम तबले को यहीं बैठकर क्यों नहीं मिला लेते हो ?"

गुणवंती बैठ चुकी, तो ललिता भीतर जाकर, हुक्के में तमाखू भर-कर, नारियल ले आई और गुणवंती को देती हुई बोली, "ससुरजी बहुत जल्दी ही बोलते दिखाई दे रहे हैं।"

गुणवंती ने चौंककर उसकी ओर देखा, जैसे कहना चाहती हो कि आज का दिन भगवान बचा ले जाए। उसका चित्त सिर्फ शाम की बैठक में

धुआं छोड़ते ही रमदिया को इस वात का अहसास हो गया कि चरस की री में जरूरत से ज्यादा उलटी-सीधी वातें कह गया है, लेकिन जब तक मैं वह वात संभालने की कोशिश करता, मोहिनी तमककर खड़ी हो गई, "अरे, मेरे चुगद भरतार !···यार, तू क्या नया धुवां देखेगा ? मेरा धुवां तो उसी दिन से देखती चली आई दुनिया, जिस दिन से इस कवीले में जनम पा गई।···अव तो रामजी दिखाएंगे, तो मैं तुम्हारा धुवां देखूंगी, कि सात फेरे की औरत की चूतड़ पर लात मारकर, भौजी की देली पर वैठे हुए कौवे की तरह का वीटना कव तक चलता है···अरे, ललता दिदी को क्या है ? इसके तो कांटे मरे हुए हैं। आलोपी जेठ जी हैं, तकदीर के मारे हुए। एक तो हो मरद मिरासी और दूसरे हो गया हो पांव का लूला, तो उसकी गत फिर कौन सुधार सकता है ?"

ललिता इस सहसा के आक्रमण को वर्दाश्त नहीं कर पाई, खड़ी होकर वोली, "अरे, मोहना ! तू तो निठुर रांड है, मगर मैं कैसे निकाल देती देली में आए हुए देवर को घर से वाहर ?"

मोहिनी धोती का फेंटा कमर में कसती चिल्ला उठी, "अरे, छविल्ली, तुझे तो वैल चाहिए। वांधकर रखे रहना अपने चुगद देवर को घाघरे के नाड़े से। मुझे क्या निठुर कहती है, तिखुली ? कोने में लाचार पड़े रहने वाले खसम से और कलेजे पर हाथ रखकर रामजी से पूछ, कसाई कौन है ?···अरे, यार दिदी ! पाल ले एक तोता और। तुझे ही मुवारक हो तेरा देवर। मेरे भाग का मैं अपने-आप भुगत लूंगी।"

शोर-शरावा सुनकर इधर-उधर से भी लोग ताक-झांक करने लगे थे। विरादरी के कुछ लोग भी अपने-अपने घर से वाहर निकलकर समझाने लगे थे। काफी दूर पदम ठाकुर की दुकान पर पान लगवाती गुणवंती भी उसी तरफ को मुड़ गई, 'हवे, नटिनियो ! आज ही मिला शकुन आंखर गाने का वखत तुमको ? क्यों, वे मोहना ? कहां मैं तुझको कह गई थी, आज जरा मंजीरा और खटका वजाकर मेरी आनन्दी की संगत कर दोगी तुम दोनों देवरानी-जिठानियां और कहां तुम दोनों का महाभारत शुरू हो गया है !···क्यों हो रमदिया, तुम क्या वैठे हुए हो वीच देली में ? मैं जा रही हूं अव डेरे को। शाम होने को आ रही है। लोग भी आने

ही वाले होंगे। पदम ठाकुर ठीक ही तो कहते हैं कि मीरासियों के डेरे में जब तक दिन में एक न एक वक्त तमले नहीं बजेंगे, तो गाधर्वों की जात कैसे पहचानी जाएगी! ···ठाकुर साहब, आप भी आ जाना हो, मौका लगे तो शायद है, दो-चार भले लोग आए। लालता, तू भी इतना मीठा मत घोल दिया कर कि पेट में कीड़े पड़ने लगें।"

गुणवती पान मुंह में भरती, दोनों की ओर चली आई, "ले वे मोहना, तू भी पान चबा और गुस्सा-गुस्सा थूक साले को। अरे आनन्दी जैसे मेरी बेटी, वैसी तुम लोगों की।"

गुणवंती का कहना लालता पर तो फलित हुआ, लेकिन मोहिनी का तैश ज्यों का त्यों था।

रमदिया चुपचाप उठकर, अपने कमरे में आया और चादर में बंधी हुई तबले की जोड़ी उठाकर जाने लगा, तो मोहिनी ने सारंगी भी पकड़ा दी, "अपना पूरा ही तामझाम लेते जाओ। मेरा हिया तो तालाब जैसा भर गया आज। मेरा भी तिरिया-हठ एक ठहरा अम्बिया के बाबू! पाल सकी, तो मेहनत-मजदूरी करके पाल लूंगी अपने छोरों को। नहीं पाल सकी, तो गले में पत्थर बांधकर रामगंगा में डूबो दूंगी।"

ललता ने सारंगी थाम ली, "अरे, मोहना, न मिले तुझको कभी खसम का सुख।···बड़ी-बूढ़ियों की तो कुछ शरम कर। गुणो दिदी भी क्या कहेगी!"

अन्दर कोने में पड़ा जोगा उस्ताद फिर कुछ चिल्लाने लगा था। ललता सारंगी लिए भीतर चली गई और रमदिया भी डेरे की तरफ चल पड़ा। मोहिनी के कुछ कहने से पहले ही, ललिता ने बोरा लाकर बिछा दिया, "गुणो दिदी बैठो हो। और लला, तुम तबले को यहीं बैठकर क्यों नहीं मिला लेते हो?"

गुणवंती बैठ चुकी, तो ललिता भीतर जाकर, हुक्के में तमाखू भर-कर, नारियल ले आई और गुणवंती को देती हुई बोली, "ससुरजी बहुत जल्दी ही बोलते दिखाई दे रहे हैं।"

गुणवंती ने चौंककर उसकी ओर देखा, जैसे कहना चाहती हो कि आज का दिन भगवान बचा ले जाए। उसका चित्त सिर्फ शाम की बैठक में

लगा हुआ था। बोली, "तुम लोग नागा न करना। बैठी रहोगी, तो अन्नो को भी हिम्मत बंधी रहेगी। शायद है, फौजी लोग हैं—कुछ नशे का जुगाड़ करते आएं। चा-पानी का बंदोबस्त तो, खैर, करना ही है।"

थोड़ी ही देर में तीनों जैसे एक में गड्ड-मड्ड हो गईं। रमदिया के दायें तबले को 'दूसरे काले' तक पहुंचाने की कोशिश हवा में चिनगारियों की तरह फैलती जा रही थी। गुणवंती को नारियल पीते हुए ही मोती उस्ताद दूर से गुजरता दिखाई दे गया और वह यह कहते हुए उठ खड़ी हुई कि, "अच्छा, रे, हम चलती हूं। तुम दोनों जरूर आना।"

मोती उस्ताद अपने-आपमें खोया हुआ-सा सीधे ओरिया पड़ाव की ओर निकल गया। अपनी बहन श्यामा के तकरार के बाद, उसने अपना डेरा वहीं धरमशाले की एक खाली पड़ी कोठरी में जमा लिया था।

उन लोगों के आपस में झगड़ने का शोर उसे गुरुकुल औषधालय में ही सुनाई दे गया था। वहीं से ठीक अपनी सीध में डेरे की तरफ बढ़ते हुए भी, एक नजर डाल ली थी और गुणवंती को बैठा देख लिया था। जब तक में वह उसके करीब पहुंचती, मोती उस्ताद ने गुणवंती के तेज कदमों से आने को अपनी पीठ पर अनुभव कर लिया था और जैसे ही वह आवाज देने को हुई, मोती उस्ताद ने बिना पीछे मुड़े ही कहा, "तेरे कदमों की आवाज को मैं साफ-साफ सुन रहा हूं, गुणो दिदी! तुझे, शायद, मालूम नहीं—मैंने आज से पुराना धन्धा और डेरा, दोनों छोड़े। नया डेरा कर लिया है।...लेकिन तू फिक्र मत कर, तेरी बैठक का बन्दोबस्त मैं पूरा कर आया हूं। ले, ये पांच रुपये बयाने के लेती जा।"

पांच का नोट गुणवंती की तरफ बढ़ाते हुए, मोती उस्ताद किनारे की तरफ धरमशाले की ओर बढ़ गया।

५

उत्तर की ओर कापार देवी, दक्षिण में करवना। पूर्व की ओर नुंयाल और पश्चिम में कोमी। अलमोड़ा शहर की हदबन्दी थोड़ा व्यापक परिवेश को लेकर की जाए, तभी एक समग्र-सा परिदृश्य बन पाता है। इस ऐतिहासिक चरित्र वाले शहर की उत्तरवर्ती बस्ती हीराडुंगरी और नारायण तेवाड़ी देवाल में बसी हुई है। हीराडुंगरी में ज्यादा संख्या कन्वर्टेड क्रिश्चियनों की थी। आपस में बिखरे हुए काटेजनुमा मकानों वाला यह इलाका मिश्रित संस्कृति और भाषा की छटा लिए हुए था। पास में ही, पाकर-वृक्षों से भरी पतली सड़क के किनारे बने कब्रिस्तान के नीचे की ओर शैल मुहल्ला बसा था, नाचने-गाने का पेशा करने वाले लोगों की बिरादरी नारायण तेवाड़ी देवाल के मुख्य बाजार से यहां तक फैली हुई थी।

वह द्वितीय युद्ध के तुरंत बाद का जमाना था। कांग्रेस का 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' आंदोलन यहां के वातावरण में भी विद्यमान था, भले ही उसका कोई संगठित रूप इस तरह का न बन पाया हो कि हर समय शहर के वातावरण में से स्वतंत्रता-आंदोलन की गंध फूटती रहे।

जहां आजकल जल-डिग्गी है, वहीं पर से सीमन शुरू होती थी, नारायण तेवाड़ी देवाल के छोटे-से बाजार की ओर धूनी के बंगले के पास जाकर समाप्त होती थी। पहले ही मोड़ पर एक ओर राजवैद्य सोमदत्तजी का 'गुरुकुल औषधालय' था, दूसरी ओर पण्डित ज्वालादत्त का 'पण्डित टी हाउस' और 'पण्डित टी हाउस' की बगल में ठाकुर जमनसिंह की साग-सब्जी की दुकान। राजवैद्य की 'गुरुकुल औषधालय' से आगे पण्डित जगदम्बा दत्त की बड़ी दुकान पोस्ट और आफिस के बाद मकानों का एक किंचित् लम्बा सिलसिला, जिसे कब्रिस्तान और पश्चिमी हीराडुंगरी तथा

'धार में की तूनी' को जाने वाली सड़क काटती थी। कब्रिस्तान को जाती वटिया से आगे फिर दुकानों-मकानों का एकतरफा सिलसिला शुरू होता था, जो पण्डित विरमदेव-धामदेव बन्धुओं की गल्ले की दुकान से लेकर, किरपाल गुरु के फड़ से आगे विलायत हुसैन धूनी के बंगले तक फैला हुआ था। सड़क-सामने पूरब की ओर लच्छीराम साह की विल्डिंग पड़ती थी और भोटिया धर्मशाला। इनसे अलग एक पुराना मकान और था, जिसमें ऊपर का हिस्सा किराये के लिए खाली रहता था, निचले हिस्से में डेविस साहब रहते थे। काफी जमीन खाली छूटती थी, तब जाके पदमा सुनारिन का घर था, जिसमें पीछे की ओर झब्बन बूचड़ का कुनवा रहता था, आगे गोश्त की दुकान थी। थोड़े-से फासले के बाद दरवारी नगर था, दरवारी नगर की वगल में कृष्णा हुड़क्यानी का एकतल्ला घर, जो बाद में 'कृष्णा पांडे कुटीर' कहलाने लगा।

अब तो वस्ती के पुराने नक्शे का रंग विल्कुल बदल गया है। शरावी-जुआरियों और मिरासिनों के अड्डे टूट गए हैं। जिन मिरासिनों के 'मोशन' राह चलते लोगों को एक ठौर इकट्ठा कर लेते थे, उनमें से बहुत की अंगुलियों में सुई-तागे के निशान पड़ गए हैं। जिनकी उंगलियां सारंगी-तवले की अभ्यस्त थीं, उनके हाथ सिलाई-मशीनों के हैंण्डिल घुमाते हैं और ठेकेदार गुलपिया उस्ताद अब जूते गांठने लग गया है।

विना सारंगी और सुंदरी का मिरासी अपनी गुजर-वसर नहीं कर सकता, मगर मोती उस्ताद के हाथ में कुछ ऐसा जस था, कि जागनाथ के मन्दिर के पंडों का जैसा हिस्सा अपने-आप ही उस तक पहुंचता रहता था। सारे शहर और खासपर्जा इलाके में अच्छे-बुरे सभी लोगों से मोती उस्ताद की दुआ-सलाम और 'स्योमान्यो' थी। मिरासी कवीले में जन्म लेने पर भी हुड़क या तवले-सारंगी से गुलपिया उस्ताद के हाथ जरा दूर ही रहते थे, मगर एक-एक राई-रत्ती की खवर मोतिया उस्ताद के मोटे और संकरे होंठों पर चरस की लम्बी चिलम जैसी टिकी रहती थी। मोती उस्ताद का कहना था कि रायते का स्वाद राई से और जलेवी का स्वाद केवड़े के अर्क से वढ़ता है। किस आदमी से किस ढंग से वातें करनी चाहिए, इस फन का पूरे मोहल्ले में अकेला फनकार था वह, सो विना पेशे का उस्ताद

ग्रौर बिना धन्धे का ठेकेदार था।

मोती उस्ताद अक्सर कहा करता था, कि 'ग्ररे, इन री-री-पी-पी करने वाले उस्तादों को तो मैं चूना लगाऊं ! ये ससुरे तो गले के सुर ग्रौर घुंघरुग्रों के ताल से ग्रागे की किसी हुनर को जानते ही नहीं, मगर मैं, तो लोगों के पांव के ग्रगूठो से लेकर सिर के लम्बे बालो तक की बाहरी ग्रौर ग्रंदरूनी हरेक नस को पहचानता हूं।'

ग्रौर यही वजह था, नाच-गाने ग्रौर महफिलबाजी के शौकीन पेशेवरों की ग्रपेक्षा निठल्ले मोती उस्ताद की बातों का भरोसा ज्यादा करते थे। मोती उस्ताद ने उस समय की नाचने वाली मिरासिनों को श्रेणीबद्ध कर रखा था। सुशीला ग्रौर रेशमा ने ग्रभी पिछले ही वर्ष से पेशेवरी पकड़ी थी, सो ग्रभी कलई नहीं उतरी थी। देह ग्रौर ग्रांखों का भराव ग्रभी मौजूद था। इन्हें उस्ताद 'ककुली' कहा करता था। मालती ग्रौर उसकी बहन ललता, दोनों मोती उस्ताद के शब्दों में, 'काम चलाऊ' थी, मगर स्वभाव दोनों का कटन्नी की नोक जितना तीखा था—शक्कर घोलकर मक्खियां बिठाने की जगह, 'न ग्रावे कोई ससुरा, तो हमारे कद्दू से !' कहने की ग्रभ्यस्त थी दोनों—उस्ताद ने इन्हें 'तिखुली' की संज्ञा दे रखी थी। बाकी की तीनों चम्पा, चना ग्रौर गुलाबो का रूप-सरूप ग्रौर स्वभाव सभी कुछ ग्रौसत दर्जे का ग्रौर, मोती उस्ताद के शब्दों में, 'बोदा' था, सो इन्हें उसने 'गोपुली'-टाइप ग्रौरतें घोषित कर रखा था। कृष्णा मोती उस्ताद की ग्रपनी ही बहन थी, इस तरह के वर्गीकरण से छूटी हुई थी।

जब कभी कोई शौकीन मोती उस्ताद से सलाह लेता था, तो वह पहले ही पूछ लेता था कि 'पहले यह बताग्रो, सरकार, कि गोपुली चाहिए, तिखुली चाहिए या ककुली ?'

शहर ग्रौर खास पंजे के शौकीन लोग तो गोपुली, तिखुली ग्रौर ककुली के बीच के फर्क को पहचान गए थे, नये लोगों को मोती उस्ताद विस्तार से समझा दिया करता था। मोती उस्ताद के माध्यम से ग्राने वाले सरकार-नवाब लोगों के लिए उसीके श्रेणी-विभाजन के ग्रनुसार बख्शीश ग्रौर छूटछूट की रकम भी तय होती थी ग्रौर उसका ग्रपना हिस्सा ग्रनुपात दोतरफा होता था।

गुणवंती भी मोती उस्ताद के हुनर की कायल थी, जानती थी, कि उसके पास वह फनकारी है, कि गोपुली-तिखुली-टाइप हुड़क्यानियों को भी 'ककुली' वताकर, उनकी महफिल में चांदी वरसवा दे और चाहे तो ककुलियों के पांवों के घुंघरुओं विना छपके ही उतर जाएं।

सुलफे की गंध लेती-लेती गुणवंती मोती उस्ताद की कोठरी में पहुंची, तो देखा, अदरिया और वदरिया भी वहीं वैठे हुए हैं। मोती उस्ताद की भारी-भारी-सी आवाज उसे सुनाई पड़ी, "अरे मेरे वेटो, मजे मारने के दिन तो तुम लोगों के, वस, आ ही रहे हैं। आनन्दी तो मेरी ही आंखों के आगे कंचनछुरी जैसी चमकेगी और उस छुरी को तुम अगर अपनी मूठ में रख सके, तो फिर चाहे सुसरे किसी का गला रेत लेना, चांदी ही चांदी वरसेगी।"

गुणवंती मोती उस्ताद की इसी आदत से जरूर चिढ़ती थी, कि उसकी संग-सोहवत में जो भी जाता है, चरस की लत उससे लिपट जाती है। चरस तक तो गनीमत, शराव की लत का अंदेशा भी लगा रहता है। यों चरस और शराव कोई परहेज की चीज नहीं, मगर इससे कुनवेदारों को फटेहाली और तंगदस्ती घेरे रहती है। और समय होता तो, वह अदरिया और वदरिया को तो डांटती-फटकारती ही, साथ-साथ चोखे अक्षर मोती उस्ताद से भी कह ही वैठती, मगर इस समय मन मार लेना पड़ा।

अव तक मोती उस्ताद ने भी गुणवंती को देख लिया था, सो वदरिया के हाथ से चिलम छीनते हुए, पूछने लगा, "तुझसे जरा साफी लपेट देने को कहा, तो तू चिलम को हाथों में कतुवे जैसा क्यों घुमा रहा है। क्यों, गुणवंती दिदी, म्यूनिसिपल्टी की लालटेन की तरह वाहर ही क्यों खड़ी हो गई है ?"

वाहर सांझ का धुंधलका था। अन्दर कोठरी में हलका-हलका अंधकार। चिलम की लौ उठी। मोती उस्ताद की चिपचिपी आंखें विजली कौंधने पर चमके तीखे कांच के टुकड़ों की तरह कौंध उठीं और गुणवंती को लगा, कि मोती उस्ताद की कंजी आंखों ने उसकी गरज को ठीक ऐसे

ही पकड़ लिया है, जैसे कम पानी वाली नदी के केकड़े छोटी-छोटी मछलियों को दबोच लेते हैं।

"क्यों, रे प्रदरिया-वदरिया, यहां मामू के पास बैठे-बैठे क्या कर रहे हो ?" कहते हुए गुणवती मोती उस्ताद की कोठरी में घुसी और प्रदरिया-बदरिया टोपियों को घुमाते हुए, बाहर की ओर निकल गए।···मोती उस्ताद के मोटे होंठों के बीचोंबीच चरस की एक लम्बी लौ उठी, "कब से शुरू करवा रही है आनन्दी से पेशेवरी ? ले, लगा एक दम।"

कंधे पर झूलता धोती का पल्ला उठा, उससे एक कोने में चिलम को टिकाकर, गुणवंती ने हल्की दो-चार फूकें खींची और फिर चिलम बढाते हुए बोली, "मोती भाई मेरे, तू तो जानता ही है हमारे कबीलों की मजबूरियां। तेरे जीजा की आंख बन्द हुई थी, तब से अकेली औरत जात कुनबे को संभालती चली आ रही हूं। थैली-टके जो कुछ बचे थे, अदरिया-बदरिया और आनन्दी के लिए उस्ताद रखने और जात-बिरादरी के गुनी जनों को खिलाने-पिलाने में खतम हो गए। अब फाकों के दिन करीब आ रहे हैं। मेरा इरादा तो अभी एक-दो साल और ठाली ही रखने का था, मगर निभ नहीं रही। जगदम्बा और विरमदेव की दुकानों से उधारी चलती रही आज तक। पिछले दो महीनों से चुकावा नहीं हो पा रहा है, तो सवेरे-सवेरे दोनों ठिकानों से खाली थैली वापस ले जानी पड़ी। कलिया-बदरिया से तबले-सारंगी की संगत के अलावा और कोई काम सरता नहीं दिखता और बिगैर घुंघरूओं की जोड़ी के तबले-सारंगी की भी कोई वकत नहीं।···लाचार हो गई हूं। परसों से ही रियाज शुरू करवा देना चाहती हूं और, इसीलिए तेरे पास भी आई हूं। मुहूरत की महफिल जरा चोखी हो जाती, तो अच्छा होता।"

"अरे, ऐन सांझ की वखत तू मोती उस्ताद के पास चली आई है, तो फिर मेरा जहूरा भी देख लेना। बांकेबिहारी लाल नेता से लेकर के कल्याणसिंह, चन्दरवल्लभ और भगवानलाल बैरिस्टरों का तिगड्डा तेरी महफिल में न जुटा दिया, तो मेरे नाम भी मोती ठेकेदार नहीं, मोतिया चमार रख देना।"

"मगर, मोती भाई, इस शहर के कठुवे रईस मुट्ठी कम खोलते हैं,

गोश्त ज्यादा नोचते हैं। मेरी अन्नो अभी एकदम कोंली छोटी है, और यहां के चुगद लोग वड़ी गन्दी-गन्दी हरकतें करते हैं। कहीं डर गई, तो हमेशा-हमेशा के लिए उसका जी कमजोर हो जाएगा।"

"कह तो तू ठीक ही रही है, दिदी ! मगर इस शहर में जो गिने-चुने रईस तवियत के लोग हैं, उनमें ये चारों सिरताज हैं। तू सच्चे दिल से मोती उस्ताद के पास आई है, इसीलिए, ले सच्ची सलाह भी सुनता जा। ये चारों इस शहर के मगरमच्छ हैं। इस तालाव में रहके इनसे वैर साधना ठीक नहीं। आज नहीं, तो कल सही। आनंदी के गले की मिठास इनके कानों तक जरूर पहुंचेगी। मेरी एक सलाह गांठ वांध लेना। इन लोगों से वैर न पालकर, जहां तक हो सके, विगैर छम् के उस्तरे से हजामत वनाने की कोशिश करना। गरम हलुवे के पत्तल को वीचोवीच से नहीं, किनारे-किनारे से खाना शुरू करना चाहिए।" मोती उस्ताद चरस की चिलम फर्श पर उलटी करते हुए वोला, "और जहां तक परसों की महफिल का सवाल है, एक 'इस्कीम' तगड़ी आ गई है मेरे दिमाग में। अगर आनंदी की तकदीर से उस दिन पलटन के आला अफसर लोग आकर शहर में टिक गए, तो उन्हींको मन्तर लाऊंगा। वेचारे जंग के खुश्क मैदानों से तड़फते हुए घरों को लौटते हैं, तो जरा-सी तरावट से ही मस्त हो जाते हैं।…और मिलिटरी के अफसरों को खुश करने का एक सवसे वड़ा जो फायदा है, वह यह है कि इस शहर से होते हुए वेनीनाग-थल-धारचूला-गंगोली हाट और पिठौरागढ़—यानी कि इस कुमाऊं की पट्टी-पट्टी के पलटनिया लोग यहीं से होते हुए अपने घरों को गुजरते हैं। यहां से जो अफसर खुश हो के जाएगा, वह अपने घर तक के रास्ते में मिलने वाले अपने संगी-साथियों से अन्नू भानजी का जिकर जरूर करेगा। गुड़ की भेली जिकतनी ही दूर पड़ी रहे, कोई हर्ज नहीं, सिर्फ गुड़ की सुगंध को दूर-दूर तक फैलने वाली हवा का रुख ठीक होना चाहिए, समझी ?"

'अरे, मेरे यार, सव कुछ समझती है, मगर औरत जात है, इसलिए कर नहीं सकती।' गुणवंती मन ही मन वुदवुदा उठी, मगर मुंह से इतना ही वोली, "अरे, मोती भाई, मरद जात की जितनी दूरंदेशी औरत जात में कहां होती है ? इसीलिए तो 'नौ टका नर, एक टका नारी। पांच

गज की धोती, चार अंगुल किनारी' कह रखा है।"

"मगर, दिदी वे, उसी चार अंगुल किनारी से तो पाच गज की धोती चारों ओर से बंधी हुई रहती है। हमारे सरपिया उस्ताद को नहीं देखा तूने ! कृष्णा लली ने ले मेरे यार को भोटिया कुत्ते की तरह ऐसा बांध रखा है कीले से, कि 'ग्याऊं-ग्याऊ' करता रह जाता है। लोग मेरे यार कहते हैं कि उस्ताद ने शादी नहीं की। मगर, मोती उस्ताद जब अपने दीदो से देखता चला आ रहा है, कि इस चुगद कबीले में मरद अपनी जोरू का खसम नहीं दलाल होता है, तो साले इस गिरस्थी के घेरे में क्यों अपना गला फंसाऊं ?" मोती उस्ताद की आवाज एकाएक तीखी हो उठी। बगल कमरे में, उसकी बहन श्यामा सारी बातें सुन रही थी, बीच की पटवाड़ के एक तख्ते को पीटती बोली, "अरे, तू तो दीवान खानदान में पैदा होते-होते हमारे कबीले में पैदा हो गया न ? हम लोगों से इतनी ही नफरत है, तो मेरी कोठरी क्यों घेरे पड़ा है ? सरपिया उस्ताद मेरा खसम है, कि तेरा ! अरे, जिस चुगद को इस घर में रहना होगा, या तो मेरे ताबे में रहेगा, या मथुरा अपना रास्ता नापेगा।"

गुणवती श्यामा को कुछ कहना ही चाहती थी, कि मोती उस्ताद ने खूंटी पर टंगा हुआ अपना पुराना कोट उतारा, फर्श पर औंधी पड़ी चरस की चिलम उठाई और यह कहता हुआ बाहर निकल गया, "अरे, इस पलीद खानदान का कद्दू मारूं ! इस कबीले में तो बहन उस भाई के सिर पर चमरौधा मारे, जिसका कलेजा बहन की दलाली करने से हिचकता हो। क्या बहनों का फर्ज होना है, और किन तरह की बदसलूकी से ये पेश आती हैं। अरे, जिन टुच्चों में तहजीब नाम की चीज नदारद होगी, वो क्या समझें कि भाई-बहन का रिश्ता क्या होता है !"

गुणवती तेजी से उठी, तो कमर में चस पड़ गई। वह जब तक में संभलकर मोती को रोकने की कोशिश करती, वह आंखों से ओझल भी हो गया। गुणवंती धीमे-धीमे बाहर निकलती श्यामा के कमरे के भीतर चली गई। श्यामा सिर्फ ब्लाउज और पेटीकोट में चारपाई पर पड़ी सिगरेट पी रही थी। धुआं कमरे के संकरेपन में से सांप की तरह निकलने की जल्दबाजी में दिख रहा था।

"क्यों रे श्यामी, कसी है ?" गुणवंती ने संवाद की गुंजाइश निकालने की कोशिश में कहा, तो वह अधबैठी हो गई। बेरुखी से देखती सिगरेट होंठों में दबाए-दबाए बोली, "तुम तो ठीक हो ना ? लक्ष्मण के तीर जैसा निकलता हुआ कहां चला गया कुंअर मोतीराम ?"

गुणवंती को उसका सख्त और आत्मीयता से शून्य रवैया चुभ रहा था। फिर भी, अपने को संयत रखकर, श्यामा की बगल में बैठ गई। चारपाई चरमराई, तो डर लगा—कहीं श्यामा यों न कह दे कि टूट जाएगी, संभलकर बैठो।

"श्यामी, एक कोख के जाए सिर्फ आंख से ही नहीं, कलेजे से भी देखना होता है, लल्ली ! मुंह-आगे का भरतार, पीठ-पीछे का भाई भाग से ही मिलता है।"

श्यामा अपनी ही जगह पर से ऐसे उठी, जैसे दुःस्वप्न देखकर जागी हो। सिगरेट का एक जोर का कश लेते हुए बोली, "राम करें, ऐसे मुंह-आगे और पीठ-पीछे के कठुओं से किसीका पाला न पड़े। पेशेवरी की कमाई में दीवानों के घर के नेग कहां निभेंगे, भैया ? यहां तो खसम और भाई, दोनों मेवाड़ी रजपूतों की सी आन वाले हैं लेकिन यहां श्यामी चंदन रचा के बैठी रहे, तो इसकी रोटी कौन डालेगा ?"

अपनी बात पूरी करने के क्रम में श्यामा ने जिस तरह पहले अपनी अंगुली को पेट से काफी नीचे और फिर ठीक नाभि पर लगाया, गुणवंती खिसियाकर रह गई। इस बात का अहसास होते ही कि इस वक्त श्यामा से आत्मीय व्यवहार की कोई गुंजाइश नहीं, गुणवंती धीमे से उठी और बाहर चली आई।

आनंदी से नाचने-गाने का पेशा कराने की सम्भावना से जो एक सन्तोष का अनुभव हो रहा था, वह धुंधला पड़ गया। कल को आनंदी का पेशा चल गया और अदरिया-बदरिया को उसकी तावेदारी करनी पड़ी, तो कहीं एक दिन यही श्यामा और मोती उस्ताद वाली नौबत न आ जाए ? जिन बेटों की जिंदगी संवारने के लिए आज सिर्फ आनंदी का आसरा-सहारा सूझता रहा है, वही कल कहीं उनके लिए समस्या बन गई, तो ?

गुणवंती थके हुए कदमों से बाजार पार करते हुए, घर की तरफ मुड़ी ही थी कि सामने से वैद्यराज ने पुकार लिया, "क्यों, री गुणवंती, आज कैसी है अब तेरी तबियत ?"

दोपहर को लगातार सात-आठ दिनों से देह टूटती लग रही है, यही हाल आधी रात के बाद रहता है, मगर आनंदी से पेशेवरी शुरू कराने की उधेड़-बुन में ही वह कुछ इतनी उलझी हुई रही थी, महसूस हो रहा था, जैसे बुखार की गाठें पड़ी हैं। परसों एक बार वैद्यराज के पास चली आई थी, और दवा ली थी, तो उस समय लगा था, बुखार तेज होता जा रहा है। और आज फिर वैद्यराज ने पुकारकर 'तबियत कैसी है' पूछ लिया, तो लगा, जोड़-जोड़ में पड़ी हुई बुखार की गाठों को एक ही झटके से खोल दिया है। एक बार उसने हाथ से ही अपनी नाड़ी देख लेने और नाभि के पास का ताप जाच लेने के बाद, गुणवती को इस बात का इतमीनान तो हो गया कि बुखार का ताप नहीं है, बरहवासी का असर है, लेकिन फिर भी 'श्रोम फार्मेसी' के पास पहुच गई।

वैद्यराज की ओर नाड़ी बढ़ाते-बढ़ाते तक गुणवंती महसूस करने लगी थी कि शाम के वक्त का झुटपुटा अधेरा उसके भीतर से बाहर फूट रहा है। उसके दोनों हाथों की कुहनियों तक की नसें टटोलने के बाद, वैद्यराज ने कुर्ती ऊपर उठाकर, अपनी हथेली से उसकी नाभि को ढाप लिया, "क्यों, गुणवंती, आवारागर्दी जैसी सारे टोले में कहा डोलती फिर रही है, इस सझा की बेला ? पहले वाली शिकायत तो अब नहीं ?"

गुणवंती ने हलके से झटके के साथ उनका हाथ कुर्ती से बाहर निकाल दिया, "आजकल तो सिर्फ बुखार ही जैसा है, गुसाईं, पहले वाली शिकायत तो नहीं है।"

"सफेद पानी तो नहीं जा रहा है ?" पूछते-पूछते वैद्यराज के मुह से टपकी लार उनकी दाढ़ी के बालों पर अटक गई। बात को संभालते हुए बोले 'देख, गुणवंती, काल से उम्र और वैद से रोग छिपाना पाप कहा गया है। वैद के लिए तो स्त्री-पुरुषों के सारे अंग एक-से हैं। उसको तो जड़ी-बूटी और जिस्म को एक ही भाव से देखना होता है। नाचने-गाने के पेशे में तो जिस्म पर जोर ज्यादा पड़ता ही है और ढलती उमर

में तो खास तौर से कई तरह के रोग हो जाते हैं। डाक्टर-वैद्यों की शरण लेनी ही पड़ती है। और रोग बुरा लग गया, तो डाक्टर-वैद्यों को बाप की जगह मानकर शरम भी छोड़नी ही पड़ती है। और इसीलिए हम लोगों का हाथ कभी ठौर-कुठौर पहुंच जाए, मुख से कोई हंसी-ठिठोली की जैसी बात ही निकल जाए, तो बुरा नहीं मानना चाहिए।"

यों तिरसठ रोगों की रामबाण-औषधियां जानने वाले वैद्यराज को भी एक रोग है, जिसे गुणवंती की सासू 'बकुवा रोग' का नाम दे गई थी, कि—औरों के कितने ही रोग दूर कर दे यह वैदराज, मगर अपना बकुवा रोग दूर नहीं कर पाएगा। मैं इसकी महतारी की उमिर की हूं, और यह मेरी ही लाज नहीं रखता, तो दूसरी जवान-जमानों की क्या रखेगा?

मगर, गुणवंती यह सोचकर संतोष करती रही है, कि औषधि कांटेदार वनस्पतियों की ही ज्यादा असरदार होती है। जो डाक्टर-वैद्य मुंह से ज्यादा मीठा बोलते हैं, उनकी दवा से फायदा जरा कम ही होता है। दूसरे यह तो कबीला ही शुरु से छीछालेदरी और हंसी-ठिठोली झेल-झेलकर पेट पालने की आदी रहा है। पनवाड़ी-कबाड़ी से लेकर बनिया-वैद्य-पुलिस-पटवारी और बारहों जातों के चलते-फिरते लोगों की तबियत बहलानी पड़ती है, बानरों की महफिल में फल कहां बेदाग बचते हैं।

"क्या हो गया, वे गुणवंती, बिच्छू ने काट दिया क्या?" वैद्यराज फिर से नाड़ी को दबाते हुए बोले।

"द, वैद्यराजज्यू, हमको कौन नहीं मारता बिच्छू की तरह डंक? हमारी तो औकात ही डंक खाने की ठहरी। दुनिया-भर के चूड़ी-चमारों का अलीत-पलीत भी बटोरा, तब जाके पेट पलता है। इस सारे चूड़ी-चमारों के आगे 'स्योमान्यो' कहकर सिर झुकाने वाली कौम भी ससुरी कहीं मान पा सकती है?"

वैद्यराज समझ गए, इस समय गुणवंती का चित्त ठिकाने पर नहीं। बोले, "तू दो-चार बोतल पिपल्यासव और अशोकारिष्ट इस्तेमाल कर ले। कभी-कभी खून की कमी से भी कलेजा फटने लगता है।...और जहां तक नाचने-गाने या किसी और किस्म के पेशे का सवाल है, यह लीक तो

प्राचीन ऋषि-मुनियों के जमाने से चली आ रही है। महाराजा इंदरदेव की सभा में भी एक से एक मेनका, रम्भा और उर्वशी मिरासिनें नाचती रहती थीं। भगवान ने सृष्टि में सबको अलग-अलग काम सौंप रखे हैं। यह मिरासी कबीला कोई तेरा या मेरा बनाया हुआ तो है नहीं? अरे, प्राचीन जुग के गंधर्व कबीले की वंशावली चली आ रही है तुम लोगों में।"

गुणवंती को कुछ शांत देख, वैद्यराज फिर बोले,"तू तो जानती है, मैं तेरी सासू के बखत से यह वैद्यकी का पेशा करता चला आ रहा हूं। धूल-बरसात और पवन की संगति में वन के वृक्षों तक को कई किसम के कीड़े लग जाते हैं। पेशेवरी के सिलसिले में बारहों मुलकों और अनेकों जातियों के मर्दों की संगति-सोहबत निभानी पड़ती है। मनुष्य देह ठहरी, कई किसम के रोग-शोक लग ही जाते हैं। मुझसे तो जहां तक हो सका है, तुम लोगों की व्याधियों को हरने की कोशिश की है। हमारे लिए तो रजस्वला नारी का स्पर्श भी पाप माना गया है, मगर वैद्यकी पेशा निभाता चला आया हूं। हालांकि दूर से मुंह देखकर ही बता सकता हूं कि वेशाल कैसी आ रही होगी—फिर भी कभी-कभी नजदीक से देख लेना जरूरी हो जाता है।···अच्छा, मैंने सुना था, तू अपनी आनंदी से पेशेवरी शुरू करवाने वाली है? अब तो कासिद भी हो गई होगी छोटी? इधर तो तूने उसका खेलना-कूदना भी बंद करवा दिया है। पहले चूरन की गोली मांगने को घड़ी-घड़ी चली आती थी।"

गुणवंती विषाद-भरे स्वर में बोली, "देखने-सुनने को तो हमने भी बड़े-बड़े रोग-शोक देखे, गुसाईं।···मगर इससे बड़ा रोग इस संसार में और कोई नहीं देखा।" अपना वाक्य समाप्त करते हुए गुणवंती ने कुर्ती उठाकर नाभि पर हथेली रखी, तो श्यामा की याद आ गई। अपने को संयत करती बोली, "सोचती थी, कुछ और सयानी हो जाने दूंगी, मगर संकरे कपाल में अक्षत कहां ठहरते हैं?"

"अरे, तो क्या हो गया? आखिर तेरी ही लड़की तो है? मैंने नहीं देखी है क्या तेरी बिजली की जैसी चमक? आनंदी तुझसे भी चार अंगुल चौड़ी ही निकलेगी। नादान तो है अभी, मगर सांप के बच्चे तो पेट से ही चित्तीदार निकलते हैं।" वैद्यराज बोले, "छोटे घरवाले जाल

में और ज्यादा मछलियां फंसती हैं। आज सवेरे-सवेरे तू दोनों दुकानों से खाली थैली वापस ले गई ? मेरी मान। कल सवेरे एक चक्कर आनंदी का ऊपर गफूर के बंगले से मेरी औषधालय तक का लगवा दे। जरा ठीक से शृंगार कर देना। फिर देख, बनियों के बंद बहीखाते तेरे लिए अपने-आप खुलते या हैं नहीं।...मगर एक काम पहले कर ले। तू तो जानने-सुनने वाली औरत है। तुम लोगों का पेशा ही ऐसा है, लाख बच के रहो, मगर रोग-शोक लगते देर नहीं लगती। मैं जरा रोगनाशक जड़ी-बूटियों से प्रक्षालन कर दूंगा, खाने की खुराक भी दे दूंगा। रोग-शोकों का अंदेशा नहीं रहेगा।..."

'प्रक्षालन' शब्द का प्रयोग वैद्यराज ने गुणवंती के न समझने के लिए किया था, मगर गुणवंती को वैद्यराज की दाढ़ी के बालों को थरथराते देखकर, यह अनुमान लगाते देर नहीं लगी कि बुड्ढा बाम्हन ठिठोली कर रहा है।

एकाएक गुणवंती मोड़े हुए कच्चे सोंटे जैसी सीधी तन गई। कहने को तो हुई, 'हम हुड़क्यानियां तो अपने पूरब जनम के कर्मों की मारी हुई हैं। जो चुगद अपनी चतुर्थावस्था में भी कन्या पर चील जैसे मंडराते हैं, उन चोट्टों की टांगों में तो ऐसे-ऐसे कोड़े पड़ेंगे, साक्षात् धनवंतरी की जड़ी-बूटियों से भी निकलेंगे नहीं। अरे, मेरे यार लोगो, गुणवंती को तो सत्यानाश कर ही दिया। अब आनंदी की मांस-बोटी का हिसाब लगाकर सौदा उधार देंगे ?' लेकिन अपने-आपको खुली पोटली की तरह ठीक से गांठ लगाती हुई सी धीमे से मुस्कराकर बोली, "प्रक्षालन करके आचमन भी कर लेना, गुसांई ! इस जनम में न जाने किसके पापों से रंडुवे ही मर रहे हो, अगला जनम तो सुधरेगा ?"

कब्रिस्तान वाले दोराहे के पास पहुंचकर, अपने घर की ओर पड़ने वाली गली में घुसने ही जा रही थी कि बिरमदेव की दुकान में से किसी ने दबी-दबी-सी आवाज में उसे पुकार लिया, "क्यों हो, गुणवंती, जरा इधर को तो आओ !"

गुणवंती ने मुड़कर देखा। दुकान की गद्दी पर इस समय बिरमदेव का बेटा पानदेव बैठा हुआ था। अन्यमनस्क-सी गुणवंती दुकान के पास

पहुंची, तो पानदेव बोला, "तुम ठीक उसी समय क्यों आती हो सौदा लेने, जिस समय बाबू दुकान में बैठे रहते हैं ? कल से जिस समय मैं बैठा रहता हूं, ठीक उसी समय या तो तुम ही आना, या चाहे तो आनंदी को लगा देना।"

गुणवती ने लालटेन की रोशनी में गद्दी पर बैठे पानदेव को देखा और कुछ क्षणों तक उसके किंचित् विचलित-से चेहरे को देखती ही रही, जैसे आईने में आनंदी का भविष्य देख रही हो।

६

"क्यों वे, किसनियां की महतारी, आठ लौकियां तोड़ रखी थीं मैंने, डलिये में तो सात ही लगी हुई हैं?" मलेशिया की चौड़ी मोहरी की सुरियाल (पायजामा) के टल्ले में अंटी हुई मिट्टी झाड़ते हुए तिरलोकसिंह ने पूछा।

किसन की महतारी, रुपुली, बाड़े में से तोड़ी हुई सब्जियां डलिया से लगाने के बाद एक लौकी अपनी घेरदार घाघरी में छिपाए अन्दर चली गई थी, कि शायद गिनने की याद इस समय न रहे तिरलोकसिंह को। चरस की चिलम चढ़ाने के बाद कुछ-कुछ लटिया-सा जाता था तिरलोकसिंह। सामान्यतया कुछ दबा हुआ-सा दिखने वाला उसका चेहरा थोड़ा सुर्ख हो जाता था और आंखों में चमक स्मृतिभ्रंश के रोगी की तरह वह अचानक आकाश की ओर एकटक देखने लगता था और हलके से जीभ लगती थी। बातों को टुकड़ों में तोड़कर कहता था। चरस की लहर में वह कभी-कभी सिर की दोकलिया टोपी डलिया में खोंस देता था और फिर रास्ते भर सिर को खुजलाता, डलिया ठौर-ठौर बिसाता, टोपी को खोजता ही रहता था।

मगर तिरलोकसिंह यह जो कहा करता था कि 'असली खानदानी साग बेचुवा जो होगा, ससुरा बेल-पौधों की बनावट देखकर बता देगा कि बेल कितनी फैलेगी, पौधा कितना फलेगा,' सो झूठ नहीं कहता था। फूल से फुल्यूड़े में बदली हुई बैंगन, कद्दू, लौकी, तोरई, चिचिंडे और ककड़ी आदि हरेक सब्जी की गिनती उसकी उंगलियों में अटकी रहती थी। बेचने लायक सब्जियों को तोड़ने के बाद वह बाकी सब्जियों का भी हिसाब लगा लेता था और जो सब्जी बिक न सकती हो, उसे ही घर वालों के खाने के लिए छोड़ता था। रोजगारी आदमी की जीभ रस-लोलुप नहीं होनी चाहिए, यह

तिरलोकसिंह का कट्टर सिद्धान्त था। जब कभी वह अच्छी सब्जी या हरी ककड़ी भूले-भटके खाता भी था, यही लगता था, जैसे इक्कनी-दुअन्नी और चवन्निया चवा रहा हो और उसे हर चीज बेस्वाद लगती थी, 'ससुरे सागवाले की तो साग लगाते-लगाते और बीनते-बीनते ही तबियत भर जाती है; फिर खाने में स्वाद कहां आता है? जिसको खुद ही बकरियों का गोश्त खाने का चस्का लग जाए, वह ससुरा गरेड़िये का धंधा क्या करेगा। उसकी तो यह हालत होगी, किसनिया की मां, कि जहां ससुरी पठिया यो हिलवान गया दो से ढाई सेर वजन पर, चट पीसो मसाला, पर डालो भड्ड में!'

अलमोड़ा शहर के आस-पास गांव खासपर्जा इलाके में गिने जाते हैं और अलमोड़ा शहर के लिए साग-सब्जी और दूध-दही की पूर्ति इन्हीं खास-पर्जा इलाके के भाटे-भटेला-बल्ट-मुल्यूड-जखेटा और फलसीमा-खत्याडी-बड़-सिमी-तलाड़-पहल आदि गावों में होती है। कुछ दूधिया लोगों के हैं, कुछ साग वालों के। बल्ट-मुल्यूड-जखेटा गावों में खेती योग्य भूमि तो इतनी नहीं, कि वर्ष-भर के लिए अन्न जुट जाए और नून, तेल, कपड़े जैसी जरूरी चीजें भी। साग-सब्जियां उगाने के लिए वहा की मिट्टी बड़ी उपजाऊ है, सो साग-सब्जी उगाना-बेचना वहा के किसानो का शुरू से ही मुख्य पेशा और रोजगार रहा है।

यहा के अधिकाश साग-बेचुवों की सब्जियां बेचने का कुछ ऐसा खब्त चढ़ा रहता है कि ये लोग अपने घरवालों के खाने के लिए सब्जिया घर पर छोड़ने में तकलीफ महसूस करते हैं। गाव में कमोबेश ऐसे ही साग-बेचुवा लोगों की बस्ती थी, मगर तिरलोकसिंह तो उनमें भी अगूठी में के नग जैसा अलग ही था। बाजार को जाते समय ज्यादा वजनदार डलिया हो, उतना ही तिरलोकसिंह प्रफुल्लित रहता था और घर लौटते समय हलका-फुलका बनकर लौटने की आदत पड़ गई थी। चार-छै आने की जो मिसरी-जलेबी कभी भूले-भटके लाता भी था, उसे बाजार से मुल्यूड गाव तक रास्ता तय करने में आधी से ज्यादा खुद ही टूग लेता था।

किसन की महतारी अभी असमंजस ही में थी कि छिपाई हुई लौकी को रखे, या लौटा दे। उसने तो यही सोचा था कि शायद आज सुलफे की तरंग में एक लौकी की गिनती बिसर ही जाए। बाजार पहुचने पर

गिनता, तो यह बहाना कर देती कि 'बेसुध जैसे तो चलते हो, कहीं सड़क पर गिरा दी होगी ! या अलमोड़ा के किसी शरारती छोकरे ने खिसका ली होगी डलिया में से !'

रुपुली ने सोच रखा था, तिरलोकसिंह के जाने पर लौकी की सब्जी बना डालेगी। घर में इतना साग-पात होता है मगर बच्चों को अघाने का सुख नहीं मिलता। कभी-कभार चोरी-पचोरी से ही जो कुछ खिला दिया, उतना ही पाते हैं छोरे ! बड़ा बेटा रतनिया तो जैसा है ही। बिल्कुल बाप के पांव रखकर पैदा हुआ है। इधर कुछ दिनों से इसीलिए उसने रतनिया की जगह, छोटे बेटे किसनिया के नाम से पुकारना शुरू कर दिया है। छोटे बच्चों की आंखों में तैरती हुई अतृप्ति सालती है। दुबारा-तिबारा साग-सब्जी मांगते हैं, तो दे नहीं पाती और छोरे, खाल पड़े कटोरों को उलटा-पुलटाकर चाटते हुए, भड़ुवे या बेझर की रोटी के टुकड़ों को हाथ में लिए-लिए कुत्ते जैसी आंखों से घूरने लगते हैं।

लौकी को घाघरी के घेरे में से निकालती रुपुली उसकी सब्जी बनाने की बात सोच ही रही थी, कि बाहर से तिरलोकसिंह ने पुकार लिया। मन हुआ कि बाहर जाकर आज जरा ततार जैसी दे ही दे कि 'क्यों हो, जरा एक लौकी निकाल ही ली है तो कौन-सी अशर्फी निकाल ली है तुम्हारे बटुवे में से ? साग-सब्जी गोड़ते-संवारते और पानी सींचते में कमर अपनी ठौर नहीं रहती है, मगर साग-सब्जी खाने के सुख के नाम पर बेल-पौधों पर लटकती हुई सब्जियां देख-देखकर अपनी ही थूक घुटका-घुटकाकर मन भरमाना पड़ता है। हमारी तो बस, मुर्गियों के जैसे अण्डा सिकाई हो रही है। सब्जियों का स्वाद तो बजरिये ले रहे हैं।'

रुपुली अभी तक ठांगर पर चढ़ाई हुई बेल जैसी अपने से ही उलझी हुई थी। लौकी को उसने ऐसे पकड़ रखा था, जैसे अपना कलेजा ही निकालकर हाथ में पकड़ रखा हो। उसे लग रहा था, आज लौकी हाथ से छूटेगी नहीं और उधर तिरलोकसिंह डलिया को सिर-ऊंचे चौंतरे पर चढ़ाकर, बेर-बेर उसके नीचे सिर लगाता था और बेर-बेर बाहर खींचकर, मुंह को पगुराती भैंस की तरह चबर-चबर चलाते हुए, चरस की गंध को नाक से पकड़ रहा था।

कुछ सोचकर रुपुली बोली, "हाँ हो, आज एक लौकी घर पर ही छोड़ जाओ।" उदिया-मधिया छोरे सात-आठ दिनों से लौकी का साग, लौकी का साग कर रहे हैं। हमने तो अभी नई फसल का फुल्गुड़ा भी नहीं चखा।"

"तुम लोग चखो मेरी भंगमेटी।" तिरलोकसिंह कुत्ते का काटा हुआ जैसे चिल्ला उठा, "चार दिन साग बेचने के ये बैसाख-जेठ-असाढ़ के ही तो होते हैं जब तक बाजार में सब्जियों के रस्ते नहीं लगते ! फिर चौमास भर नौकिया को इकन्नी-दुअन्नी में भी कौन पूछता है ? और इन महारानी के छुट्टों की लपलपिया वाली ऐन रोजगार के मौसम में ही ज्यादा ल्याप-ल्याप्प करती है। ले मरती यार, अपने बाप की जोरू बन जा तू। हाय रे, सब से सिरताज लौकी खिसका ले गई ! अरे, रख ससुरी लौकी को लौकी की जगह पर। अपने घाघरे में कहां घुसेड़ रही है ? आज सारी सब्जी लाठ साहब के बंगले में पहुंचानी है मैंने !"

रुपुली अन्दर ही खड़ी थी, मगर वह जानती थी कि बाहर आंगन में से तिरलोकसिंह की गिद्ध-दीठ उसकी देह पर अल्लम जैसी लगी हुई है। मन मारकर, रुपुली मुड़ी। लौकी डलिया पर रख आई और भीतर आकर सोए हुए उदिया-मधिया को झांकरिया झनझनाने लगी, "लो, उठो मेरे फुट्टो ! ससुरी, खाओ नई लौकी का साग ! द, तुम दुष्टों की जीभ कभी नहीं चख पावेगी लौकी का साग, ससुरो ! न जाय तुम लोगों के सिर आते सावन का हरियाला। तुम्हारी जनेऊ, पत्थर पर रह जाय। सेंतने वाला न काटे इस साल की ऋतु। हे राम, जैसे तीन तिरलोक इन ससुरे बाप-बेटों ने मिलकर मुझ अभागिनी को दिखा दिए हैं—होगा कोई साक्षात् इंसाफ करने वाला, तो सिर्फ रात-रात के समम तमुरे को भी दण्ड जरूर दिखाएगा।"

मां की चीखने की आवाजें सुनकर उदिया और मधिया जाग गए थे और रुपुली को लग रहा था, आज जब तक इन दोनों छोरों का गला नहीं घोट लेगी, तब तक उसके कलेजे का दाह कम नहीं होगा। सब्जियां ले जाकर बेचने तक की बात तो सही जा सकती थी, क्योंकि सभी साग-बेचुवों के घर की यही दशा थी, मगर जहां कई और साग-बेचुवे सब्जियां बेचकर

चाय-मिसरी-गुड़ की भेली, नून-तेल, तमाखू जैसे घर-जरूरी चीजें और अपने वाल-वच्चों के लिए जलेवियां-शकरपारे लेकर लौटते थे, वहां माधोसिंह जुआरी और तिरलोकसिंह की जोड़ी आधी रात को पपड़शिला के पास के टीले पर वड़ी देर तक चरस चलाने के वाद वैठकों के गीत गाते हुए लौटते थे—'अरे वावा, वे मेरी कफुली, हाई रे, केले जैसी तू पकी हुई है तू—हाई, मैं मारुल हाथ, मेरि मुरुलि वाजिये···'

जाते समय वड़े जतन से डलिया सजा-सजाकर जाते थे दोनों। मोल-भाव न पटने पर भरी दोपहरी में तल्ली वाजार मल्ली वाजार तक के चक्कर काटते थे, मगर जहां सब्जियां विकी नहीं, कुछ समय रतन लाल के फड़ में छक्के-पंजे का जोड़ा लुढ़काने में कटता था। कुछ भिमुवा ठेकेदार की भट्ठी में और कुछ लौटते-लौटते मिरासिनों के गीत सुनकर, सीटियां वजाने में। इन तीन ठिकानों से होते हुए आधी रात को ठोकर खाते, गंदे गाने गाते हुए घर लौटते थे, तो मुंह से शराव या चरस की वदवू वाकी वची हुई रहती थी और जेवों में जलेवियों और पान-सिगरेट के दाग।

तिरलोकसिंह की जी दुखाने वाली वातों को याद करते-करते, रुपुली की आंखों से आंसू नितरते चले जा रहे थे और उदिया-मधिया की झांकरियां उसके हाथों से छूट चुकी थीं। उदिया-मधिया विल्ली के नोचे हुए पिल्लों जैसे एक कोने में दुवक गए। भूख से उनके पेट कुलवुला रहे थे। कलेवा करने का समय हो गया था, मगर अपनी मां का रूप देखकर सहम गए थे। वड़ा वेटा करमिया परसों वहन के गांव चला गया था—भिटौली देने। लौटा नहीं। रुपुली जानती थी, कहीं यार-दोस्तों में ताश-फल्लाश खेलता, वहीं पड़ा रह गया होगा।

थोड़ी देर हिचकियां भरते रहने के वाद एक कोने में पिल्लों जैसे दुवके, भय से फैली आंखों से अपनी ओर ताकते उदिया-मधिया को रुपुली ने देखा तो तेजी से उनकी ओर लपकी, "अरे, तुम अनजान छोरों को दी हुई सारी गालियां मुझ रांड पर ही पड़ जाएं।" तभी वाहर चौतरे पर जूते उतारकर करमिया अन्दर घुसा, "ठंडी-ठंडी छांव में खजूर के तले। हो ओ-ओ-ओ···"

"क्यों रे, आ गया नौटंकीवाज?" रुपुली को लगा, मानो नौटंकी-

सिनेमा के गीत गाता तिरलोकसिंह ही वापस लौटा है।

आखिरी फूंक खींचकर बीड़ी को अंगुलियों से दूर छिटकाते हुए, रतनिया बोला, "लेन्तेरी, आखों के सामने खड़ा है और महतारी पूछ रही है, क्यों वे, आया, या नहीं ? यह नहीं कहेंगी, कि आ चेले, चहा पीले, रोटी-साग खा ले !"

रोटी-साग का नाम सुनते ही रुपुली फिर क्रोध से भमक उठी, "अं, आ खिलाती हूं तुझे रोटी-साग। घर गया है तेरा बाप अपने हाड़ा चढ़ाती हूं अभी चूल्हे में।" कहने को तो कह गई रुपुली मगर फिर पछताने लगी, कम से कम ऐसी कुलच्छिनी भाषा तो सुबह-सुबह सुहागिनी को नहीं बोलनी चाहिए।

बहन के यहां का लौटा रतनिया रात बन्ट गांव के अपने दोस्त अमरखा ववाली के घर पर ही रह गया था। कोटपीस खेलते-खेलते रात बिता दी थी, मगर खाने-पीने के नाम पर एक बार गुड़ की कटकिया चाय पी रखी थी। इस समय वह भूख और नींद से खीझा हुआ था। रुपुली का रूखा व्यौहार और बिफरा हुआ चेहरा देखकर, और भी ज्यादा झुंझला उठा, "अरे, मेरे लिए तो जैसा बाप, वैसी महतारी। बौज्यू से कहा था, एक सूट बना दो। आज सर्दी खिसक के चौमास लगने को आ गया। तुझसे कभी रोटी-साग भी मांगी, तो आखें तरेरती कालिका जैसी झिंझोड़ने को आती है। न देवे परमेश्वर किसी साले को ऐसे निर्मोही मां-बाप। ऐसों से तो औलाद लावारिस ही भली !"

"हे राम, औरों की भी औलाद होती है। बगल में ही देवरानी का नादान बेटा खेतों से थकी मां लौटती है तो पांव की पिण्डलियां दबाने लगता है। कहने को विधवा है, मगर एक नादान बेटे से ऐसे-ऐसे सुख पा रही है, जैसे तुझ जैसे हजार कपूतों से नहीं मिल सकते।"

"क्यों रे रतना, चेला ! तूने कभी अपने हिये को भी टटोला ? जिस दिन से इस घर में मेरे पांव पड़े, बिना चौमासे का कोई दिन मेरी आखों ने देखा नहीं। जुआरी-शराबी और कंजूस खसम से कपूत जनमाने के अलावा और कोई संसार का सुख नहीं देखा। सोचती थी, खसम तो जैसा मिल गया, पूरब जनम के पापों का दण्ड मिल गया; मगर संतति जरा सुघर

जाएगी, तो सब्र कर लूंगी। मगर एक तू सयाना हुआ, तो तुझे गुच्ची, ताश और नौटंकी, सिनेमा के गीतों से ही फुरसत नहीं मिलती। कभी तूने एक आंखर यह भी पूछा, कि महतारी, रात-दिन तू मसूर जैसी वोती रहती है, भरे-पूरे परिवार में ऐसा कठकीड़ा क्या लग गया है, तुझे ? जिस पौवे को ऊपर से जानवर नोच खाएं, मिट्टी-नीचे की जड़ों में कुरमुल कीड़ा लग जाए, उसकी गति कैसी होगी, लला ? सिर पर का छत्तर खसम भंगखद्दी, डोमनियों जितना भी मेरा भरम नहीं रखता। आंचल की आस-औलाद की ममता दिखाई नहीं देती। दो जलती भट्ठियों के बीच में यह वदनसीव औरत कहां तक सावित वचेगी ?"

वह सुन रहा था। वचपन से ऊधम करते-करते अव सयाना होने को आ गया था तो, चित्त भी दिन पर दिन शिल जैसा ठोस होता चला गया था। रुपुली की आंख का जल ठहर ही नहीं पाता। फिर आज तो वह और दिनों से ज्यादा कुढ़ा हुआ था। कोटपीस खेलते-खेलते अमरुवा ववाली और वह फल्लाश खेलने लगे थे और वहन से जवर्दस्ती थमाए हुए दो रुपये वहीं हार आया था। कहां उसने सोचा था, फल्लाश में कुछ पैसे खींच लिए, तो फिर सीवे वाजार को चल देगा। दिन-भर मटर-गश्ती करेगा, चाट-भटुवा-चकलेट उड़ाएगा और शाम को 'जम्वू का वेटा' देखने चला जाएगा। दूसरी सुवह को घर वापस आएगा, तो छोटे भाइयों के लिए जलेवी रख लेगा और मां के लिए मिसरी-गोला। मगर नंगी जेव और खाली पेट लिए ही लौटना पड़ा था और ऊपर से मां विलाप करती, उपदेश दे रही थी। उदिया और मधिया को उसने आंचल से लगा रखा था, मगर उसकी ओर, अभी भी, रोप-भरी आंखों से देख रही थी।

वोल उठा, "तुम लोग तो जनमाने तक के माता-पिता हो, भैया ! पालने-पोसने के नाम पर वाप के पास सुंगरों का जैसा डुडाट है और तेरे पास केकई का जैसा विलाप। साले, इतने वाग-वगीचे तो लगा रखे हैं, मगर खाने के लिए साग-सब्जी हराम हो गई। ले मेरे यार, वौज्यू तो रकम गांठते हैं, अत्तर-ठर्रे और जुए के फड़ों में गुलछर्रे उड़ाते हैं—यहां वेटे के चूतड़ों पर टल्ले पड़ गए हैं। वहन के घर जाओ, तो जी खट्टा हो जाता है। औरों के भी तो वेटे हैं। कोट-कालर-टाई लटकाते हुए

ग्रौर सैर करते हुए कभी मेले-ठेलों में निकल जाते हैं, तो देखने वालों की पहचान जाती रहती है कि—शहर के रईसों के बच्चे हैं, या नाग-पात बेचने वालों के। रतनुवा बेटा तो मा-बाप के होते ही लावारिस ग्रौलाद बन गया है।"

"परमेसुर करे रे, मुझ राडी से तो यह घर खाली ही हो जाए।" रघुली ने कन्धे से चिपके खड़े उदिया को ग्रौर छाती चूसते मधिया को जोर के झटके के साथ इधर-उधर फेंक दिया, "ग्ररे, मेरा तो जब ग्रपना ही दूध मुझ राडी को यों कलेश देता है, तो वह पराया पूत, मुनरा खसम क्या सुख देगा ? बाप की टागें खोचने को तुम ससुरे मर जाते हो ? जिस तरह ग्रपनी इस महतारी राडी को झिझोड़ने को दौड़ते हो, ऐसे ही बाप रंडुवे से क्यों नहीं चिपटते ? बार से तो सब लिलुरी-लिलुरी लट-पटाते हैं। महतारी बिना सींग-पूछ की पा रखी है, मार बनबिलारों का जैसा गुगार करते हुए—मुंह नोचने को ग्राते हैं। कौन महतारी राड ऐसी होगी रे रतना, जिसका हिया ग्रपनी संतान को सुख के गाम खिलाने को नहीं ललकता होगा ? मगर मैं ग्रभागिनी क्या करूं ? एक लौकी निकाल-कर लाई, तेरे बाप ने जमीन में भी नहीं रखने दी। सारे चैत-बैसाख प्याज खाते-खाते मुंह गड़ने लग गया। तुम छोरे मेरी जान खाते हो। लो, मेरी देह में तो ये तुम्हारे ही लभोड़े हुए थन लटकने रह गए हैं—इन्हीका शिकार पका खाग्रो !"

बोलते-बोलते, रघुली का गला बांस जैसा चिर गया ग्रौर वह जोर-जोर से विलाप करने लगी, "यार निठुर परमेसुर, ऐसे पलीत नारी-जनम से तो चौरस्ते की कुतिया बनाया होता, तो सुख से रहती मैं···"

रतनिया ने ग्रपनी ही जगह पर धनुष की तरह खिंचते हुए, थोड़ी देर तो एकटक मा को घूरा ग्रौर फिर तेजी से दराती लेकर, खेतों की ग्रोर लपका, "करती रह केकई जैसा विलाप। ग्रौर कुछ जो तुझसे हो सकने वाला होता, भैया, तो ग्राज तेरी यह गति ही क्यों होती ? कुछ नहीं, ससुरी ग्रौरत की जात भी ! झब्बन बूचड़ की छुरी के नीचे पड़ी म्या-म्या मिमियाती रहेगी, लेकिन ये नहीं होगा कि मार जूतों के ससुरे मरद की खाल उतार ले।"

थोड़ी ही देर में वह तिरलोकसिंह के द्वारा कल के वेचने के लिए अनुमान लगाई सब्जियां तोड़-तोड़कर, डलिया भर के लौट आया, "अरे, हमारे गांगी चाचा ठीक कहा करते हैं, कि बेटे, हलुवे का स्वाद लेने के लिए अपनी ही जीभ लगानी पड़ती है। आज से साली अपने हिस्से की सब्जी मैं खुद ही वेचने ले जाया करूंगा। दब के रहूंगा, तो जूते के भीतर की जीभ की तरह दवाया जाऊंगा। कब तक भाड़ झोंकता रहूं आखिर? पत्थरों के नीचे दबी हुई दूब की गांठ तो हरी हो नहीं सकती।"

रुपुली जल्दी से उठी, वाहर आई। रतनिया की ठुड्डी में हाथ लगाती बोली, "रतना रे, ऐसा मत कर, चेला! तेरा बाप तो कसाई किसम का आदमी है। बाजार में ही कहीं आमने-सामने भेंट हो जाएगी, तो सिर फोड़ डालेगा तेरा। ला, इधर रख डलिया। ला, तेरे लिए लौकी कड़ाई भर के साग बना दूंगी। तेरे बाप से कह दूंगी, गुस्से में मैंने ही तोड़ डालीं सब्जियां। अपने-आप लतियाएगा मुझे। तू नादानी मत कर…"

"अरे, तू आज छोड़ तो दे, महतारी!" रुपुली का हाथ हटाते हुए रतनसिंह वोला, "तू समझती है, मेरा बेटा साला उजड्ड है, उल्लू का पट्ठा है! मगर महतारी, मैं भी उसी बांस का लट्ठ हूं। ठहर, ठहर जा, मेरे बाप, तेरी आवारागर्द जिन्दगी को जो मैंने जसुवा कोढ़ी की तरह एक ठौर खड़ी रहने वाली नहीं बनाया—और वो भी सिर्फ चंद, गिने हुए दिनों के अन्दर, तो मुझे भी ठाकुर का नहीं, चमार का बेटा कह देना।"

रुपुली लाख रोकती रही, मगर वह रुका नहीं। जाते-जाते एक बड़ी लौकी रुपुली की ओर और एक ककड़ी सीढ़ियों पर गौरैया के भीगे हुए जोड़े जैसे खड़े उदिया-मधिया की ओर फेंक गया, "अरे यारो, जो जैसा करम करेगा, वैसे फल भुगतेगा, मगर तुम क्यों कलपते हो? महतारी, उदिया-मधिया को आज कड़ाई भर के साग खिला देना। मेरे लिए मत रखना। मैं तो आज खिमुवा चचा के होटल में कलेजी-गुर्दे के भटुवे के साथ डबलरोटी ठोककर घर वापस लौटूंगा।"

उदिया-मधिया तो ककड़ी लेकर पिछवाड़े की तरफ चले गए, मगर

रुपुली से थोड़ी देर तक लौकी उठाई ही नहीं गई, "हे राम, न होने पावे इन दो बाप-बेटों की बाजार में आमने-सामने भेंट! अहा रे, सास का उदर अलग था, मेरा उदर अलग, मगर साड़ों की जोड़ी एक सरीखी जनम गई है!"

रतनसिंह आंखों से ओझल हो गया, तो मन मारकर रुपुली लौकी काटने बैठ गई। ऊपर कोयार देवी के शिखर पर से पक्षियों का एक बड़ा-सा झुण्ड उड़ता छत पर से गुजर गया।

"मैया, तू ही पत रखना।" रुपुली ने चिड़ियों के झुण्ड की ओर हाथ जोड़ते हुए कहा और साग काटकर, डलिया में पड़े किसनिया को दूध पिलाने को भीतर मुड़ गई।

७

सुबह-सुबह घाटियों पर से आकाश की ओर उमड़ते समुद्र की तरह उठता हुआ कोहरा अब धीरे-धीरे छंटने लगा था। गुणवंती बाहर निकली थी, तब कोहरों में जंगल तक डूबे हुए थे, लेकिन इस वक्त कापार देवी के मंदिर के चारों ओर के चीड़-वृक्ष चीवर उतारकर समवेत वेदपाठ में आत्म-विस्मृत ऋषियों की सी मुद्रा में खड़े दिखाई दे रहे थे। हवा नदी की तरह बह रही थी—और ऐसे में हलकी-सी धूप का वातावरण में फैलना काफी मोहक लग रहा था। चुभती हुई सर्दी के बीच एक धीमी-धीमी ऊष्मा का सा अहसास नींद में से उठकर एकाएक बाहर चले आने के आलस्य को सार्थक करता लग रहा था।

गुणवंती धीमे से सीढ़ियों पर से नीचे उतरी। एक कोने में बैठकर लघुशंका से निबटी। कुर्ती के खुले बटन ठीक से लगाए। चारों तरफ उड़ने को पंख तोलते पक्षी की सी मुद्रा में देखने के बाद, गुणवंती ने एक बार गोठ वाले कमरे में झांक लिया। दरवाजा बन्द था, सिर्फ दोनों बेटों के अक्सर दिखने वाले चेहरों की कल्पना ही वह कर पाई कि गहरी नींद में कैसे लग रहे होंगे। फिर सुदूर की यात्रा से लौटी हुई सी, सीढ़ियां चढ़ती, ऊपर चली आई।

संभालते-संभालते भी खांसी के वेग को थाम नहीं पाई गुणवंती, तो कुछ देर वहीं बैठ गई। खांसी थमने पर, सिर के बिखरे हुए बालों को ठीक किया और भीतर की ओर झांकते हुए, आवाज लगाई, "आनंदी, चेली, अब उठ जाती रे! वो देख तो कासार मैया के मंदिर में घाम चमकने लगा। जखेरा-मुल्यूड़ के साग-पात बेचने वाले और दूधिये सड़क पर आते दिखाई देने लगे हैं। कुछ तो सर्दी के ऐन बाद का मौसम, कुछ बुढ़ापे की मार—खांसी चढ़ती है, तो मार चढ़ती चली जाती है। चेली, जरा उठकर,

फलों लदे को बहार का एक बड़ा कारण [illegible] फागुन, जब से दोनों [illegible] को [illegible] देखती [illegible] को तुलती हूँ, और सवेरे उठकर देखती हूँ—[illegible] हैं कमल जाने खिलने लगे हैं। [illegible] को जाने के नया हुआ है, बेटी! [illegible] खिले कानों खिले अनुरागन सभी चीजों से [illegible] हूक को ऊंचा देता। आनोखन के दुख स्वाद [illegible]

आनंदी की ओर ने देखा। गुणवन्ती [illegible] बोल कर वाले तक के नवद को गुनगुनाकर दिखाती रही।

"ने, ना, वाह!" कहते हुए आनंदी ने [illegible] के साथ करते बढ़ाया, तो गुणवन्ती की नजर उसके [illegible] और संतु निश्चिन्तता के बीच उसके [illegible] की ओर चला गया। एक भोली सी मुस्कराहट गुणवंती के होठों पर उभर आई। आनंदी ने अपनी [illegible] बिठाकर, प्यार से उसका सिर थपथपा दी बोली, "अभी तो [illegible] रहीं थी, तो अचानक ही गाने का ये मुखड़ा निकल पड़ा, '[illegible] सबहिं बन फूले...सबहिं [illegible] फूले, सबहिं बन फूले...[illegible] अंग...ए-ए-ए...सबहिं मिल [illegible]' ...तुमको तो गीत बताया ही था, बेटी, कि शुद्ध भैरवी के सुरों में इसे गाया जाता है। बीच में दीप ठेका लगता है। रिसाव-निषाद, दोनों कोमल लगते हैं।...हां, तो कहने वाली मैं यह थी कि माघ का महीना बीतने को आ गया है, फागुन आता ही होगा। अबकी जो होलियों की बैठकें होंगी, उनमें तुम्हें भी गवाना है मुझे। लोग देखें तो सही कि गुणवंती की बेटी ने कुछ [illegible] आई भी है, कि नहीं। काफी और खमाज ठाट की कुछ राग-रागिनियों का खास तौर से अभ्यास कर लेना। अभी [illegible] सम पर ठीक से नहीं आ पाती है तू। और, [illegible] वालों के बीच शिरकत करने में ही आती है।...तू पढ़ती, [illegible] सुबह कथा बांचने बैठ गई है, लेकिन बहुत दिनों से [illegible] कि तू सुनने काबिल हो जाए, तो कुछ कहूं।...[illegible] होती है और इसमें सिर्फ राग-रागिनियों को ही नहीं [illegible], जितनी

की ढेर सारी दूसरी हकीकतों को भी समझना पड़ता है। अभी-अभी तुझे देख रही थी, तो मुझे अपनी जवानी के दिन याद आ रहे थे। मेरी तो सात बरस की उम्र में ही शादी हो गई थी, तू तो सत्रहवें में लग गई। मेरी सासूजी अपने वक्त की नामदार मिरासिन थीं। पहाड़ी गाने भी क्लैसिकल के सुर लगाकर गाती थीं और बड़े-बड़े रईसों की बैठकों में आना-जाना था उनका। तुझको तो पिछले कातिक से सत्रहवां लग गया। इस ठंडे मुलुक में हर चीज देर से बढ़ती है। बनारस-लखनऊ में तेरी उम्र की लड़कियां मुजरा करने लगती हैं।"

आनंदी चुपचाप सुन रही थी। गुणवंती ने एकाएक कहा, "जा, तू भी चहा पी ले, चेली !"

आनंदी चाय का गिलास हाथ में लिए, थोड़े-से फासले पर आकर बैठ गई, तो गुणवंती ने इतमीनान से कहना शुरू किया, "ये संसार विचित्र है, चेली ! यहां पर तू यों समझ ले कि फूल तो सैंकड़ों जात के होते हैं, मगर उनपर मंडराने वाले भौंरों की जात एक सरीखी होती है।···हम मिरासिनों की जात क्या है, वह तो एक निराधार बेल है। जैसे वन की बेल पर कौन जात का पंछी बैठा, कौन जात का नहीं, ठीक ऐसे ही, हम मिरासिनों के घर न जाने कौन जात का मरद कब आ बैठता है। ब्राह्मण आए, बनिया आए और चाहे ठाकुर आए या डोमड़ा—मिरासिनों के पास तो हर कोई जात सिर्फ एक ही किसम की हविश लेकर आती है।···कानों से गाना सुनने वाले आंखों से गोश्तखोर ये लोग, चेली, व रसिया यार किसके, दम लगाई और खिसके वाली मिसाल के होते हैं। इनसे बहुत होशियारी से निबटना होता है।"

अपनी बेटी को आज दीक्षा देने बैठी हुई थी गुणवंती, आज का दिन उसके लिए सुख, भावावेश और विषाद का मिला-जुला दिन था। उसकी चलती के दिन बीत चुके इस पेशे में। 'सोलह की छबीली, छत्तीसा छकड़ा,' कहलाती है, मगर गुणवंती ने तैंतालीसवें बरस को भी छोड़ दिया, पेशा नहीं छोड़ा। देह में झोल पड़ गए। चार-चार बच्चे हो चुके, कमर पथरा गई, मगर जिस समय घुंघरू पैरों में बांधे 'बाली उमर बरकैयां, ना छेड़ो सैंया' के बोलों पर बांस की कोमल तनी सी लचकती चली जाती गुणवंती,

अच्छे-अच्छों की नजर बाध देती थी।

अब तो कुछ वैद्यराज दुर्गादत्तजी विमुख हो गए, कुछ उम्र की मार पड़ी, मगर बीते महीने तक यही कहा करते थे, कि गुणवंती तो अलमोडा की घुरुवा-चुपुवा मिरासिनों के बीच की मेनका अप्सरा है। अरे, इसीकी बदौलत यह चेचकरू चेहरे जैसा मनहूस मोहल्ला इंदरदेव का अखाड़ा बना हुआ है। अहा-रे, ताक-धिन्ना, ताक-धिन्ना, तिरकिट गिन्ना—का गुणी, जीती रह बिजुली। तेरे छमछमिया पावों की चाल किसी ने नहीं पकड़ी। मेरी मूंछ-दाढ़ी में चूना फिर गया, मगर तेरे गले में बंधी हुई कासे की घंटी की सुरीली आवाज ज्यों की त्यों बरकरार है। जीती रह।"

कुछ तो रोजी-रोटी की मजबूरी रही और कुछ उस्तादों के सिखाए हुए हुनर की बरकत, जिन्दगी जैसे-तैसे निभाती चली आई। मगर काल किसी का भी भरम बहुत दिनों तक नहीं रखता, इससे बेखबर नहीं है। वैद्यराज तो बकुआ प्रकृति के आदमी हैं, एक तरफ से 'मेनका अप्सरा' कहते हैं, तो यह कहते भी नहीं चूकते कि 'सिफलिस, सारंगी और सिपाहियों की संगति में अच्छे से अच्छे इस्पात की सिल्ली भी टूट जाय, गुणवंती बेचारी तो आखिर हाड़-मांस की मूरत है।'

और गुणवंती जानती है कि वैद्यराज की यह बात झूठी नहीं। चलती के ठेके पर फिरकनी लेते-लेते कमर चसकने लगती है। घुटनों और कंधों के जोड़ चटकते महसूस होते हैं। गले की नसें कसकर निचोड़ी हुई धोती की परतों की तरह सुलने लगती हैं और फिर गाने की असमर्थता को 'भोगनों' के आवरण से ढंकना पड़ता है। 'बारी उमर लरकइया' न गा सकने की विवशता को बायें हाथ की हथेली से थोड़ी ऊपर दायें हाथ की हथेली को नचाते हुए छिपाना पड़ता है। कुछ तो उमर की मार से जंगल का काठ, नदी का लोढ़ा भी नहीं बचता। कुछ किस्म-किस्म के ईरान-तूरान-जापान घूमकर लौटे हुए पलटनिया-सिपाहियों-सरदारों ने देह गला दी और कुछ घुंघरूओं, तबला-सारंगी के बोलों पर टिकी हुई गृहस्थी की अव्यवस्था कमजोर करती है। कुल मिलाकर गुणवंती को आखिर इसी फैसले पर आना पड़ा है, कि उसकी अपनी कमर के सहारे तो यह गृहस्थी अब टिकेगी नहीं।

संतोष इतना ही है, कि परमेश्वर ने बारहों रास्ते बंद नहीं कर रखे

जाएंगे, जिन दिनों में नारी को पुरुष की संगति ज्यादा प्यारी लगती है। यह तो सिरिष्टि का सुभाव है, मगर हम हुड़क्यानियों की जिंदगी एक पुरुष से बंधकर ही नहीं कटती। हम लोगों के पास तो जात-जात के पुरुष आते हैं और हमें पेशे-गैरपेशे से सभी को जिसको जैसा हुआ—'दीपा थाने दीपो, पिण्डा थाने पिण्डो' करते हुए निभाना पड़ता है। पुरुष की जात तो औरत के मामले में कुत्ते की जात होती है, चेली, हड्डी-बोटी देखकर ही ललचती है। सो, तू मेरी सीख को गांठ बांध ले। हड्डी-बोटी तभी तक संभलती है, जब तक उसे बहुतों के दांत न लगें। कलावंत को मुश्कमिजाजी से और मायकी वाली को इश्कमिजाजी से बचाना चाहिए। हमारे पास आने वाला हर कोई आशिक है, मगर सिर्फ पेशे का फर्ज और रोजी की मजबूरी निभाने तक। सुनती है न, ऊन्नू ?"

सुन तो रही थी, आनंदी, मगर समझ कितना पा रही थी, इसका अंदाजा लगाना कठिन था। खैर, गुणवंती को तो आज अपना मन हलका कर लेना था, सो वह कहती चली गई, "चेली, गुलाम उस्ताद कहा करते थे, कि हमारे ही हिन्दुस्तान में लखनऊ-बनारस जैसे शहर भी हैं जहां पर गुनवंतियां सिर्फ गाने-नाचने का पेशा करती हैं और ठाट-बाट से जिन्दगी गुजारती हैं।···मगर यह तो पहाड़ का मुलुक और अलमोड़ा जैसा शहर है, चेली ! वहां राजा, रईस और नवाब लोग पेशेवालियों की कद्र भी करते हैं और कौड़ियों की मोल अशर्फियां भी लुटाते हैं। यहां के तमाशबाजों में या तो बाजार के बनिये हैं, या बेकार आवारागर्द छोरे हैं और या पूजा-पाठ करने वाले पंडित लोग। सभी लोग कला की कद्रदानी रखते नहीं, काया के लाल भी ज्यादा होते हैं। कोई पाई-पाई जोड़ने वाला, कोई मिजाज का मजनू और बुलबुलबाज मगर टेंट का ठन-ठन गोपाल और कोई हथेली फैलाकर दक्षिणा उघानेवाला होता है। ऐसों की मुट्ठी खोलने से पेट-पलाई भले ही हो जाए, ऐशो-इशरत के सपने पूरे नहीं होते, चेली ! बंदरों के हगने से खेतों को खाद नहीं मिला करती।···इस पूरे अलमोड़ा शहर में गिनती के रईस ही ऐसे हैं, जिनकी मुट्ठी में अशर्फियों की छाप पड़ी रहती है।···दस-बीस जो गोरे और एंग्लोइंडियन साहब लोग हैं, वो लोग तो बैरे-खानसामे को बख्शीश दे देंगे, मगर हुड़क्यानी के

कंधे पर दांत गड़ाकर, 'टा-टा' करते हुए चले जाएंगे।'''ले-दे के बचते हैं पलटन से घर लौटने वाले सिपाही-सरदार। बस, मिरासिनों के तो साईं-गुसाईं ये ही अफसर लोग हैं। इन्हीं से परवरिश होती है और मिरासिन को तो यही चाहिए, कि जितना गुड़ पड़े, उससे ज्यादा मिठास देवे।"

छाती से लगे-लगे आनंदी को पलक लगते लग गई थी। गुणवंती का मन मीठा हो आया। लाड़ के नाम से दुलारती बोली, "किड़ी, दुबारा नींद लगने लगी है, चेली? अब तो, चेली, घाम चौंतरे पर पालतू बिल्ली जैसा बैठ गया है। रियाज नहीं करेगी आज? गफ्फार उस्ताद भी आने ही वाले होंगे। आज सोमवार है, परसों का तेरा मुहूरत सिद्ध करवा रखा है। तेरी पेशेवर जिंदगानी की पहली सीढ़ी परसों पड़ेगी। परसों ही तेरे पावों का सच्चा हुनर लोगों के सामने आएगा। मैंने इरादा यही कर रखा है, कि मुहूरत किसी पलटन के अफसर से ही कराऊंगी।"

आनंदी जैसे चौंककर, जग गई। उसका मन कौतूहल और लाज से कसमसा रहा था। बोली, "मां, पलटनिया लोगों से मुझे डर लगता है। उनकी मूछें बहुत बड़ी-बड़ी होती हैं।"

"जिस गैया को दुहना होता है, किड़ी, उसकी पूंछ-लात भी सहनी ही पड़ती है।" गुणवंती बोली, "मगर मिरासिन की लड़की को इतना जतन जरूर करना चाहिए, कि उसके पास कला और काया की जो कस्तूरी रहनी है, उसकी खुशबू से ही दूसरों को बावरा बनाए, कस्तूरी का बौड़ा किसी एक को सौंपने से हमारा कुनबा टूटता है। बहुतों के हाथ पड़े, तो कस्तूरी मिट्टी में मिलती है। मैंने तो तुझे पहले बता दिया है, कि यह साला चुगद पहाड़ी मुलुक है। सिर्फ पेशे से पेट-पलाई भी मुश्किल से ही हो सकती है। दूसरे, नीचे के कबीलों में तो भकरुआ भूत भी देवता की तरह पूजा जाता है। हम मिरासिनों के लिए भी इस चुगद शहर के घुरुवा-धुधुवा लोग और पलटन के सिपाही, सूबेदार ही राजा, रईस और नवाब लोग हैं।'''और जितनी छोटी औकात का आदमी होगा, वह उतना ही चमड़ी का भूखा ज्यादा और कला का कदरदान कम होगा। पहले-पहले मैं भी यही सोचती थी, चेली, कि रोजी-रोटी का जो हमारा

जाएंगे, जिन दिनों में नारी को पुरुष की संगति ज्यादा प्यारी लगती है। यह तो सिरिष्टि का सुभाव है, मगर हम हुड़क्यानियों की जिंदगी एक पुरुष से बंधकर ही नहीं कटती। हम लोगों के पास तो जात-जात के पुरुष आते हैं और हमें पेशे-गैरपेशे से सभी को जिसको जैसा हुआ—'दीपा थाने दीपो, पिण्डा थाने पिण्डो' करते हुए निभाना पड़ता है। पुरुष की जात तो औरत के मामले में कुत्ते की जात होती है, चेली, हड्डी-बोटी देखकर ही ललचती है। सो, तू मेरी सीख को गांठ बांध ले। हड्डी-बोटी तभी तक संभलती है, जब तक उसे बहुतों के दांत न लगें। कलावंत को मुश्कमिजाजी से और मायकी वाली को इश्कमिजाजी से बचाना चाहिए। हमारे पास आने वाला हर कोई आशिक है, मगर सिर्फ पेशे का फर्ज और रोजी की मजबूरी निभाने तक। सुनती है न, अन्नू ?"

सुन तो रही थी, आनंदी, मगर समझ कितना पा रही थी, इसका अंदाजा लगाना कठिन था। खैर, गुणवंती को तो आज अपना मन हलका कर लेना था, सो वह कहती चली गई, "चेली, गुलाम उस्ताद कहा करते थे, कि हमारे ही हिन्दुस्तान में लखनऊ-बनारस जैसे शहर भी हैं जहां पर गुनवंतियां सिर्फ गाने-नाचने का पेशा करती हैं और ठाट-बाट से जिन्दगी गुजारती हैं। ···मगर यह तो पहाड़ का मुलुक और अलमोड़ा जैसा शहर है, चेली ! वहां राजा, रईस और नवाब लोग पेशेवालियों की कद्र भी करते हैं और कौड़ियों की मोल अशर्फियां भी लुटाते हैं। यहां के तमाशबाजों में या तो बाजार के बनिये हैं, या बेकार आवारागर्द छोरे हैं और या पूजा-पाठ करने वाले पंडित लोग। सभी लोग कला की कद्रदानी रखते नहीं, काया के लाल भी ज्यादा होते हैं। कोई पाई-पाई जोड़ने वाला, कोई मिजाज का मजनू और बुलबुलबाज मगर टेंट का ठन-ठन गोपाल और कोई हथेली फैलाकर दक्षिणा उघानेवाला होता है। ऐसों की मुट्ठी खोलने से पेट-पलाई भले ही हो जाए, ऐशो-इशरत के सपने पूरे नहीं होते, चेली ! बंदरों के हगने से खेतों को खाद नहीं मिला करती। ···इस पूरे अलमोड़ा शहर में गिनती के रईस ही ऐसे हैं, जिनकी मुट्ठी में अशर्फियों की छाप पड़ी रहती है। ···दस-बीस जो गोरे और एंग्लोइंडियन साहब लोग हैं, वो लोग तो बैरे-खानसामे को बख्शीश दे देंगे, मगर हुड़क्यानी के

कंधे पर दांत गड़ाकर, 'टा-टा' करते हुए चले जाएंगे।···ले-दे के बचते हैं पलटन से घर लौटने वाले सिपाही-सरदार। बस्स, मिरासिनों के तो साईं-गुसाईं ये ही अफसर लोग हैं। इन्हीं से परवरिश होती है और मिरासिन को तो यही चाहिए, कि जितना गुड़ पड़े, उससे ज्यादा मिठास देवे।"

छाती से लगे-लगे आनंदी की पलक लगते लग गई थी। गुणवंती का मन मीठा हो आया। लाड़ के नाम से दुलारती बोली, "किड़ी, दुबारा नींद लगने लगी है, चेली? अब वो, चेली, घाम चौंतरे पर पालतू बिल्ली जैसा बैठ गया है।. रियाज नहीं करेगी आज? गफ्फार उस्ताद भी आने ही वाले होंगे। आज सोमवार है, परसों का तेरा मुहूरत सिद्ध करवा रखा है। तेरी पेशेवर जिंदगानी की पहली सीढ़ी परसों पड़ेगी। परसों ही तेरे पांवों का सच्चा हुनर लोगों के सामने आएगा। मैंने इरादा यही कर रखा है, कि मुहूरत किसी पलटन के अफसर से ही कराऊंगी।"

आनंदी जैसे चौंककर, जग गई। उसका मन कौतूहल और लाज से कसमसा रहा था। बोली, "मां, पलटनिया लोगों से मुझे डर लगता है। उनकी मूछें बहुत बड़ी-बड़ी होती हैं।"

"जिस गैया को दुहना होता है, किड़ी, उसकी पूछ-लात भी सहनी ही पड़ती है।" गुणवंती बोली, "मगर मिरासिन की लड़की को इतना जतन जरूर करना चाहिए, कि उसके पास कला और काया की जो कस्तूरी रहती है, उसकी खुशबू से ही दूसरों को बावरा बनाए, कस्तूरी का बीड़ा किसी एक को सौंपने से हमारा कुनबा टूटता है। बहुतों के हाथ पड़े, तो कस्तूरी मिट्टी में मिलती है। मैंने तो तुझे पहले बता दिया है, कि यह साला चुगद पहाड़ी मुलुक है। सिर्फ पेशे से पेट-पलाई भी मुश्किल से ही हो सकती है। दूसरे, नीचे के कबीलों में तो झकरुआ भूत भी देवता की तरह पूजा जाता है। हम मिरासिनों के लिए भी इस चुगद शहर के पुरुवा-चुपुवा लोग और पलटन के सिपाही, सूबेदार ही राजा, रईस और नवाब लोग हैं।···और जितनी छोटी औकात का आदमी होगा, वह उतना ही चमड़ी का भूखा ज्यादा और कला का कदरदान कम होगा। पहले-पहले मैं भी यही सोचती थी, चेली, कि रोजी-रोटी का जो हमारा

पेशा है, यह तो पुश्तैनी है, गैरपेशा तो रंडियों का होता है। लेकिन इस चमार शहर में रहते हुए पतुरियाए बिना दिन कहां कटते हैं ? गुलाम उस्ताद कहते थे, कि लखनऊ-बनारस की एक-एक बैठक में सदा सौ का तो इत्र-फुलेल ही लगता है। यहां तो पच्चीस रुपल्लियों में एक महीना हुड़क्यानीबाजी करने वाले चुगदों की बस्ती है। एक वह लीडर चुगा आता है, कि 'मैं तो बीस रुपये महीने में गाने और बजाने के दिनों काम लेता हूं।'…अख्थू, तेरी बिशरम जात के मुंह पर पान थूकूं !"

होंठ बिचकाकर, फर्श पर थूकने के बाद, गुणवंती फिर आनंदी से कुछ कहना चाहती थी, कि बाहर से बदरिया की आवाज आई "मां वे, उस्ताद आ गए हैं। जरा अन्नू को तो भेज दे बाहर।"

गुणवंती उठ खड़ी हुई और देली के दरवाजे से सिर बाहर निकालकर, 'सलाम, उस्ताद !' कहकर फिर आनंदी की ओर लौट आई, "किड़ू, चुंदरी ओढ़ ले, लली ! शागिर्दी का आज आखिरी दिन है तेरा। दिखा दे उस्ताद को, कि हुनर की पकड़ अलमोड़े की मिरासिनों में भी कम नहीं। मेरा यार मियां बहुत रामपुरियों, बरेली वालियों के गुन बखाना करता है। अरे, मेरी अन्नू तो नाचने-गाने के हुनर में सुसरी सिनेमा की हिरोइनों को चूना लगा दे, मगर चवन्नी-अठन्नी पकड़ा कर मूंछ ऐंठने वाले चुगदों के लिए ऊंचे दर्जे का हुनर सीखने को किसकी फटी पड़ी है ? ऐसा चूतिया कौन होगा जो टटुआ कुत्तों को परिन्दों का गोश्त खिलाने के लिए, ले मेरा यार, जंगल-जंगल मारा फिरेगा ?…आ रही है, उस्ताद, तनिक कपड़े संवार रही है। बेटी, एक चीज का ध्यान हमेशा रखना—कलावंतों को दूसरों के सामने हमेशा सुंदर वेश में निकलना चाहिए, जैसे कि गुलाब फूल निकलता है। सज-संवर के न निकले, तो रूप आधा रह जाता है। 'एक नूर नूर, सो नूर गहना-कपड़ा।' कह रखा है बुजुर्गों ने। तू जरा आंगड़ी को अब ठीक से पहना कर। कन्या-कुमारी थापने के वक्त के न्योतने की तेरी उम्र अब रही नहीं।"

अपनी बात पूरी करके, गुणवंती लाड़ से हंसी और धीमे से आनंदी का माथा चूम लिया।

तन्-तत्-थुन्-दिदा-दिग्-दिग्-थेई'''

तत्-तन्-थुन्-थुन्'''

उस्ताद मुंह से बोल बोलते जा रहे थे, मगर ग्रांखें उनकी ग्रानंदी की साड़ियों ग्रौर पिंडलियों पर अटकी हुई थीं। एड़ियों की मोटी नसें डोरी की तरह उछली हुई, मुगौर मांसल पिंडलियों को दो फाक करती-सी, सीधे घुटनों के जोड़ पर ही जाकर थमी थीं।'''ग्रौर चूंकि ग्रानंदी घाघरी पहने नाच रही थी, सो जब वह 'दिदा-दिग्-दिग्-थेई' बोल पर घूम ले ली थी, घाघरी गोलाई में फैलकर, ऊपर उठती थी ग्रौर तभी उस्ताद उनकी पिंडलियों को दो फाक कर घुटनों के तले थमती कौली नागिनों की जोड़ी जैसी नसों को देख पाते थे। इनके लिए ग्रपनी गरदन बाईं ग्रोर नीचे को झुकाकर, ग्रपने दायें घुटने पर ताल देते चले जाते थे उस्ताद—तत्-तत्-थुन्-थुन्'''

गुणवंती की ग्रांखें ग्रौर दिनों ग्रानंदी के पांवों पर टिकी रहती थीं, मगर ग्राज उस्ताद की बाईं ग्रोर दबी हुई गरदन की फूली हुई नसों पर ही उलझ गईं। परगों में ग्रानंदी को पेशेवरी पकड़नी है, इस विचार ने उनकी नजर ही बदल दी थी। ग्रब उनकी नजर में ग्रानंदी रिं-रिं-रिं-रिं मोहल्ले के छोकरे-छोकरियों के साथ दौड़ती-खेलती ग्रौर चूरन-नेमनजूस के लिए दुकानदारों के ग्रागे हाथ फैलाती या कि राह चलते मुसाफिरों से बख्शीश मांगने वाली छिड़ी नहीं रह गई थी। वह रेशम की चुंदरी ग्रौर मखमल की ग्रंगिया-घाघरी में पत्तों के बीच की कली जैसी वह खिलने लगी थी ग्रौर गुणवंती जहां एक ग्रोर सुख से भर रही थी, कि ग्रौरों के घर तुलसी-जाई फूलती है, मगर उनके घर साक्षात् लक्ष्मी ही फूलने लगी है, तो सावधान भी हो रही थी, कि चांदी-सोने की जड़ मूरत भी बड़े जतन-पहरे से रखनी पड़ती है, ग्रानंदी तो चलती-फिरती लक्ष्मी है।

मगर उस्ताद का ध्यान ग्रानंदी की एड़ी ग्रौर शायद, उसके घुटनों पर ही कड़ी पाक के बताशे जैसा जम गया था, "दिदा दिग्-दिग्-थेई-दिदा-दिग्-दिग्-थेई—दिदा-दिग्-दिग्—ग्ररे, वा मेरी नच्चो! कुरबान जाऊं तेरे पांवों की कमसिन जोड़ी पर। वाह, वाह, वाहवा! तेरी तो एक-एक नस कत्थक नृत्त की देवी का रूप उतारने के लिए बनी है। गुण-

वंती जान, मेरी मानो तो मौशिकी के इस नायाव टुकड़े को इस टुच्चे शहर की धूल में मत मिलने दो। रामपुर से मेरे तहेरे भाई जान अश्फाक मियां का नृत्त-इस्कूल चलता है। मैं अपने वरकत वेटे को भी ह्वीं हुनर हाशिल करने को भेज रहा हूं। मेरी मानो, तो अन्नू विट्टो को भी ह्वीं ही…"

"अरे, मैं किसकी-किसकी मानूं, उस्ताद ? एक वह पव्लिक लीडर विहारीलाल है, वह मेरा यार कहता है, कि 'आजकल हिंदुस्तान मुलुक को आजाद करने की लड़ाई लड़ी जा रही है। अलमोड़ा जिले की एक गदरपार्टी तैयार की जा रही है। गदरपार्टी का काम सारे हिंदुस्तान में घूमते हुए गोरा-शाही राज को खतम कराना रहेगा। मगर गदरपार्टी के लोगों के लिए छुपे रुस्तमी से काम लेना जरूरी है। हम लोग यहां से एक मिरासी पार्टी वना करके लखनऊ की तरफ निकलेंगे। अपनी विटिया आनंदी और तवलची वदरिया को देश के लिए कुरवान कर दे !' अरे, मैं पूछती हूं मेरे यार, कि सारे अलमोड़ा शहर में तुझे एक मेरी ही वेटी मिली कुरवानी के लिए ? अरे, तू सुसरा लीडरवाजी में रहा, वड़ी उमर में भी लौंडा ही वना रहा आंडू।…मगर तेरे वाप ने जो तीन मस्तानियां जनी हैं, लाला वाजार, पलटन वाजार की सड़कों पर थिरकती-फिरती हैं, उन्हीं के पांवों में क्यों नहीं वांधता घुंघरू ? चल, तवले का ठेका लगाने को मैं भेज दूंगी कलिया को। अरे, मेरे यार, सव लोगों की नजर घूम-फिरके हम हुड़क्यानियों पर ही अटकती है। नजर तो आकर जाती है हुड़क्यानियों की टांगों तक, और देश को आजाद कराएंगे ये सात मुलुकों के वादशाह अंग्रेजों से।…गुणवंती को उल्लू वनाने का यह वहाना खूव निकाला यार तूने ! अरे, ऐसे मर्दों की जात लीडरी-नेतागीरी करे, मगर कुत्तों की नियत कुतिया की पूंछ पर से ऊपर कहां उठती है ? अरे मियां, मैं सव जानती हूं गोश्तखोरों की नियत को। चंद साल पहले जो राध-किशन पंडित मेरा ही खसम वनके रहने को अपनी छैपलिया जनेऊ हाथ में लपेटता था, आज ही हाथ में मूतने को तैयार नहीं है ! गोश्त-गोश्त झिंझोड़कर हड्डी फेंक देने वाले कुत्ते मैंने वहुतेरे देखे हैं, मियां ! अरे, मेरी अन्नू जरा सयानी होने क्या लगी, ले मेरे यार, सव चील की तरह

झपट्टा मारने को तैयार कर रहे हैं।...अरे उस्ताद, अन्नो को तो, कभी ऐरा कहेगा मेरे साथ लगा दे, और कभी खैरा! अन्नू की महतारी और भाई-बिरादर गए कद्दू में?"

'कद्दू में' कहते हुए अपने दोनों हाथों की अंगुलियों की कैंची फंसाकर, गुणवंती उस्ताद की तरफ तीखी आंखों में देखा, तो उस्ताद हकलाने लग गए, "अरे, गुणवती जान, तुम तो मेरा...तुम तो मेरा... मेरा मतलब था..."

"गुणवंती ने भी तीस बरस सिर्फ अपने चूतड़ ही नहीं नचाए, उस्ताद, अच्छे से अच्छे खानदानियों से अपना थूका भी चटवाया है।" गुणवती और तीखी आवाज में बोली, "मगर अपनी फटी पर मेरा थूक भी चाटने वाले मेरी गरज पर हथेली में मूतने को भी तैयार नहीं है। तुम सोच रहे होगे, उस्ताद, कि यह गुणवंती बड़ी फाहशा और बदजबान है, मगर मेरी तरह लगातार तीस साल तक अपने पीछे कुत्ते लगाए-लगाए जिंदगानी तुम्हें भी काटनी पड़ती, तो समझ पाते, कि मेरे जिगर और जिसम दोनों की हालत क्या हो चुकी है। मैंने तो, मियां, मरद की जात बंदर की जात देखी। बंदर ससुरा चुगद कितना भी थक के आया हो, मगर नासपाती के पेड़ की छाया में उसे बिठाओ, तो वह छाया में बैठकर सुस्ताने की जगह, सीधा फलों को काटने-कुतरने को दौड़ेगा। जिन ससुरों का रोग हरने के लिए मैंने अपनी आत्मा सौंपी, वो चुगद जिस्म गलाने वाले रोग देके खिसक गए।...खैर, अब बहुत लम्बी दास्तान तुम्हें क्या सुनाऊं, उस्ताद! तुम अपने बरकत के लिए और कोई लड़की ढूंढो। अन्नू को तो मैं कहीं, किसी के साथ नहीं लगा सकती। मेरी उमर तो अब ढल चुकी, उस्ताद, मगर कुनबा बढ़ गया है। तीन-तीन बिना जमीन में टिके खम्भे घर में खड़े हैं। इनका भी तो कुछ जतन-बंदोबस्त चाहिए? हम गरीबों के घर तो कंगाली का डेरा रहता है, उस्ताद! खेती-पाती-रोजगार-बिजनिस, जो कुछ है, बस यही पेशेवरी है।"

गफ्फार उस्ताद ने देखा, गुणवंती का गला भर आया है और आंखें भी। बोले, "मैंने तो ऐसी बदनियती से कोई बात नहीं कही थी। अन्नू में फनकारी के बीज देखे, कह बैठा। तुम्हारी अपनी चदिशें हैं, उन्हें तुम

बेशक मुझसे बेहतर समझ सकती हो। मैं तो हुनर और फनकारी का कायल हूं, फनकार की बंदिशों का नहीं।"

गफ्फार उस्ताद जाने लगे, तो गुणवंती टुकुर-टुकुर ताकती रही। बोली, "मेरे गुनाह माफ करना, उस्ताद ! छोटी औकात की हूं, तो मेरी एक हद बंधी हुई है।···और उस्ताद, दो महीनों से फूटी कौड़ी घर में नहीं आई है। अब अन्नो के भरोसे बैठी हूं। हाथ में आते ही अपनी औकात के मुताबिक खिदमत करने से नहीं चूकूंगी। और उस्ताद, बुरा मैंने आपकी नेक सलाह का नहीं माना—अपनी कम औकात के ख्याल का कुत्ता काट गया ! ख्वाहिश तो ये भी थी कि नृत्त सम्राट उदेशंकर के गांधर्व केन्द्र में सीखे अन्नू ! बड़े पेड़ों की बड़ी छाया होती है—लेकिन उस्ताद, कमनसीबों के कपाल में अक्छत कहां अटकते हैं।" अपनी बात खत्म करते-करते गुणवंती का गला भर आया।

गफ्फार उस्ताद जा चुके, तो अन्नू बोली, "मां, उस्ताद ने डेढ़ साल मुझे बेटी की तरह हुनर सिखाया और तूने आज उनके साथ इतना बुरा सलूक किया, यह ठीक तो नहीं किया।"

कलिया और बदरिया दोनों इस सारी चख-चख से ऊब गए थे, बीड़ी सुलगाते हुए बाहर खिसक गए। गुणवंती भी उठी और बाहर जाते हुए बोली, "तू साग-रोटी की जुगत कर लेना, चेली, मैं जरा वैद्यजी और गुलबिया के पास हो आती हूं। कलिया और बदरिया को रोजी-रोटी से ज्यादा आवारागर्दी भली लगती है। अरे, साले जिस कुनबे-कबीले में खसम औरत की, भाई बहन की साजिदी करेगा, औलाद कहां से गैरतदार पैदा होगी ? पेट की मार बड़े-बड़ों को मार देती है, हम नामुरादों की क्या कहो, क्या सुनो !" कमर में हाथ रखते हुए गुणवंती सीढ़ियां उतरने लगी, तो आनंदी उसे एकटक देखती रही। इस वक्त गुणवंती ऐसी लग रही थी, जैसे नीम उजाले में कोई छाया मंडरा रही हो !

८

दोपहर के 'शो' में 'जम्बू का बेटा' देखकर, करमसिंह शहर से वापस देवाल पदम ठाकुर की दुकान तक पहुंचा, तो उसे पता चला, आज तिरलोकसिंह बाजार से करीब दो-तीन हजार का गांठा बनाकर लाया था, लेकिन यहां किरपाल गुरू की दुकान में बिशन लम्बू और उसके दोस्तों ने मिलकर उसकी 'मुर्गी'[1] बना दी। खाली डलिया सिर पर धरे, और रुपये लाने घर चला गया था, मगर अभी तक तो लौटा नहीं।

आनन-फानन में साग बेचकर, करमसिंह फिल्म देखने चला गया था, लेकिन जम्बू के बेटे के शौर्य-भरे करतब देखते हुए भी उसे यही अहसास हो रहा था कि यह सारी जवांमर्दी चंद घड़ियों की है। आखिर-आखिर घर लौटना होगा और जब बाप की अढ़ैया पड़ेगी, तो भगवान ही बचाने वाला है—और या मां। उसे सुबह का मां का बिलखना याद आया और उसे पहली बार इस बात की अनुभूति हुई कि मां के जीवन में जिन विपत्तियों को घटित होते देखा है, वो सब एक शृंखला का रूप धारण कर रहे हैं। कभी अपने पैरों पर खड़ा होने का वक्त आ गया, तो सबसे पहले मां को मुक्ति दिलानी है कि ले, अब जरा बुढ़ापा तो सुख-चैन से काट ले। मां का भी दूसरों से कहने को हो जाएगा कि जिस सिक्के को खोटा समझकर, उम्मीद छोड़ रखी थी, अंत आने में उसी ने सहारा दिया है।

मां के बारे में कल्पना करते हुए ही अचानक करमसिंह ने अपनी भावी पत्नी के रूप में जान-पहचान की दूर-दूर से देखी कई एक लड़कियों के बारे में सोचा था और लगा था कि सारा अस्तित्व एक अद्भुत स्निग्धता से भर गया है। उसकी कल्पना यहां तक चली गई थी कि इन्हीं लड़कियों में से किसी एक से उसका बच्चा भी हो जाता है और उसे

---

१. कपट से हराने को 'मुर्गी' बनाना कहते हैं।

नहला-धुलाकर, जैसे ही वह चबूतरे पर तेल-मालिश करने बैठती है, मां आती है और दुलार से डपटती कहती है कि 'क्यों वे, चंद्रा ! छोटे बालकों को कहीं ऐसे तेल लगाया जाता है ?'

अब, इस वक्त, यह जानते ही कि तिरलोकसिंह जुवे में भी हारकर ही घर वापस पहुंच गया है,—और हो सकता है, हारे हुए जुवारी को खुन्नस में रुपुली के जेवर झटककर, वापस आता ही हो—करमसिंह का सारा माया-लोक विलीन हो गया। अब उसकी कल्पनाशक्ति अपने गुस्सैल पिता पर ही केन्द्रित हो गई। जैसे ही तिरलोकसिंह घर पहुंचा होगा, साग-सब्जियों के बाड़ों में नजर आते ही और आग-बबूला हो गया होगा। ढीठ तो करमसिंह था, मगर तिरलोकसिंह से डरता भी बहुत था। कुछ भी हो, आखिर बाप तो बाप है। चार लात-घूंसे रख भी दे, तो उल्टी लात तो नहीं ही मारी जा सकती। करमसिंह सोच में पड़ गया, आज घर वापस जाना ठीक नहीं है। वह परेशान था कि आखिर यहीं कहीं बस्ती में आज की रात काटी जाए, तभी देवाल अपर-प्राइमरी और टाउन मिडिल स्कूल के दिनों का सहपाठी पानदेव दिखाई दे गया।

पानदेव भी आज रोमांचक मानसिकता में था। गुणवंती अभी-अभी उधार सौदा लेकर विदा हुई थी और पिता कुशलदेव शहर से खरीदारी करके वापस लौटे थे। गनीमत थी कि सारे कोठों कनस्तरों में उड़ती चील की सी दृष्टि डालने के बाद 'श्री राम, श्री राम' कहते हुए उन्होंने गल्ले का सन्दूक खोला था और उसी में झुके-झुके कह दिया था कि, 'अच्छा रे पानू, तू अब घर चला जा। मां से कहना, 'बाबू दुकान बंद होने पर आवेंगे।' और दिनों तो पानदेव गल्ले की संदूक से कभी-कभी सिनेमा जाने और सिगरेट पीने को पर्याप्त पैसे ही अंटी किया करता था, मगर आज आनंदी का नाच देखने की ललक थी मन में, तो दस रुपये अंटी कर लिए थे। बैठक में रुपये-पैसों की हथकट होती है, पानदेव जानता था, और जब उसका मन इस बात के लिए विकल था कि किस तरह से आनंदी या उसकी मां तक पहुंचा जाए। किसी तरह छिपछिपकर ही सही, आनंदी का नाचना-गाना भी जरा देख-सुन लिया जाता, तो एक तृष्णा-सी जो है, तृप्त हो जाती। गुणवंती का घर तो काफी एकांत में

पड़ता है। वहीं पास में चाचा ब्रह्मदेव भी रहते हैं। फौज से छुट्टियों में घर आए थे, लौट चुके हों। बस काकी होंगी और उनके दोनों छोटे बच्चे। उनके घर की खिड़की से गुणवती के घर में होती महफिल साफ-साफ दिख सकती है। डर है, तो सिर्फ इतना, पास-पड़ोस के महफिल में आए ने देख लिया, तो कहीं बात घर तक न पहुंच जाए।

अन्तर्द्वंद्व में पड़े पानदेव ने करमसिंह को देखा, तो एक सहारा जैसा मिला और वह तेजी से करमसिंह की ओर मुड़ गया, "क्यों, डियर करम, आज सिनेमा देखकर लौटा है क्या ?"

करमसिंह भी आगे बढ़कर, पानदेव के साथ हो लिया। पहले अपर प्राइमरी में और फिर दो-तीन वर्षों तक टाउन स्कूल में दोनों ने साथ-साथ पढ़ा था। दोनों लगभग समवयस्क थे। पिता कुशलदेव ने चने-गुड़ की सिर्चों-मिर्चों से शुरू करके गल्ले-राशन की दुकान खोल ली थी, मगर मुंह का स्वाद, कपड़े का शौक मारते-मारते दिन काट दिए। दुकान में घी के कनस्तर पड़े रहते थे, मगर घर में दाल अक्सर तेल से ही छौंकी जाती थी। सबसे छोटे भाई धामदेव की कपड़े की थोक-फुटकर दुकान थी, मगर दोनों भाइयों के पायजामे-कुर्तों के टल्ले अभी तक नहीं छूटे थे।

मगर कुशलदेव और धामदेव, दोनों भाइयों के बड़े लड़के पानदेव और पुनान्ददेव कुछ अलग ही उतरे थे। अच्छे कपड़े पहनने, चाट-मिठाई खाने और सिनेमा देखने का दोनों को ही शौक था। गल्लेदारी में कम, आवारागर्दी में ज्यादा आनंद आता था दोनों को, मगर अपने-अपने पिता की दृष्टि से दोनों ही जरा बचते थे। मां का डर किसी को नहीं था। कभी टोकती भी थीं महतारियां, तो तराई भाबर भाग जाने या पल्टन में भर्ती हो जाने की धमकी देकर समस्या हल कर लेते थे।

अपर प्राइमरी की शिक्षा के दिनों कुशलदेव का बेटा होने के नाते पानदेव क्लास-मेट, मोनीटर बना रहता था और उसका दोस्त होने के नाते करमसिंह सब-मोनीटर होता था। स्कूल के कई मास्टर कुशलदेव के यहां से राशन, धामदेव के यहां से कपड़ा उधार खरीदते रहते थे, सो पानदेव और पुनान्द को डाटने-फटकारने की गल्ती कोई नहीं करता था।

पानदेव अपने करमिया जैसे यार-दोस्तों के साथ आवारागर्दी में ही

ज्यादा समय बिताता था। मीरासिनों को छेड़ना, अक्का-बक्का बकना और सिगरेट-बीड़ी फूंकना—ये सारे व्यसन ऐसे थे, जिनमें स्कूल की पढ़ाई से कहीं बहुत ज्यादा आनंद मिला करता था इन लोगों को। चूंकि पानदेव अपनी दुकान से खट्टी-मीठी गोलियां, गुड़-चना-मूंगफलियां और बिस्कुट वगैरह चुरा लाया करता था, इसलिए दोस्त भी उसके प्रति वफादार रहते थे। पानदेव शरीर से काफी कमजोर था और करमसिंह शुरू से ही स्वस्थ और ताकतवर। वर्षों तक लगातार दोनों की नहल-दहल की जैसी जोड़ी रही थी। मगर लगातार चार वर्षों तक हाई-स्कूल फाइनल की परीक्षा में फेल हो जाने के बाद, पानदेव दुकान के गल्ले पर बैठने लग गया था। करमसिंह का स्कूल जाना दर्जा नौ, सेक्सन सी की छमाही से ही छूट गया था और तब से पानदेव-करमसिंह की भेंट यदाकदा तभी होती थी, जब करमसिंह बाजार की तरफ आता था।

"कहो, यार गुरू, क्या हाल-चाल हो रहे हैं आजकल ?" करमसिंह ने दुकानों की कतार से आगे निकल आते ही पानदेव का हाथ दबाया।

"कुछ नहीं, यार, तू कौन-सा सिनेमा देखकर आया है आज ?"

"लच्छीराम थेटर में 'जम्बू का बेटा' देखने गया था, यार गुरू, उसमें हाउस फुल हो गया। फिर 'मुरली मनोहर' में 'विजय का डंका' देखने चला गया। कमाल की पिक्चर है, यार ! ऐसे-ऐसे नाच-गाने…"

"तूने तस्वीरों को ही नाचते-गाते तो सुना होगा, यार ठाकुर ! यहां तो, आज जिंदा डांस-गाना सुनने का प्रोग्राम चौपट हो रहा है।"

"कैसा प्रोग्राम, गुरू ?"

"यार, जरा धीरे-धीरे बोल। जरा 'कौन्फीडेंशिल' किस्म की बातें करनी हैं। अन्नी को तू जानता ही है ? वही फिड़ी छोरी, यार, हाफ टाइम की छुट्टी में हम जिसको कभी-कभी छेड़ते थे ? तूने तो एक बार उसकी झगुली भी ऊपर लौटा दी थी।…बाई गाड यार, उस जमाने में हमको अकल ही कहां थी ?"

"हां, यार गुरू !…मगर आनंदी को बहुत अकल थी। बाद में हमको देख-देख, शरमाकर, भाग जाती थी। बाई फादर डियर, इन डेरे वालों की छोरियों में अकल बहुत होती है। जितनी बड़ी उन दिनों वह थी, उससे

वहाँ छोरियां तो हमारे गांव में नंग-धड़ंग ही भैंसों के साथ तालाब में नहाती हैं।"

"सिर्फ अकल ही नहीं होती है, डियर! इन छोरियों में हुस्न भी बहुत होता है। सुना है, आनंदी नाचने में कुक्कू को भी मात कर रही है!"

"वाई फादर?"

"वाई गौड, डियर! तूने उसका नाच-गाना सुना होता, तो सिनेमा देखना भूल जाता।" पानदेव ने फिर से करमसिंह का हाथ दबा दिया और बताया, कि कैसे आज गुणवंती आनंदी की पहली महफिल कर रही है। करमसिंह को दत्तचित होकर सुनते देख, पानदेव और अधिक उत्साह के साथ बोला, "यार, खबर तो यहां यह फैली हुई है, कि तेरे बापू बाजार से दो-तीन हजार रुपयों का गांठा बना लाए थे। तेरे लिए काली सरज का सूट और तेरी महतारी के लिए सोने की नथ भी खरीद लाए थे।··· मगर यहां किरपाल गुरू की फड़ में आकर लालच में सब गंवा गए।··· और सुना है, अब चचला डेरेवाली के यहां महफिलबाजी होनेवाली है रात को। अभी तो जुआ ही खेलने में होंगे। लेकिन जहां तक मेरी 'अण्डर-स्टैंडिंग' काम कर रही है—हम लोगों का चचलिया के डेरे पर जाना ठीक नहीं रहेगा। हालांकि हैं तो दोनों के घर करीबन-करीबन पास ही, लेकिन गुणवंती का घर जरा एकान्त में पड़ता है। फिर जो बात आज आनंदी में होगी, चंचलिया में कहां? वह तो थैला हो गई है।···लेकिन सुना है, आनंदी के डेरे में फौजी लोग आने वाले हैं? खैर, 'व्हेयर दियर इज ए विल, दैट दियर इज ए वे औलसो'। हमारे चाचा ब्रह्मदेवजी वाला घर ऐन गुणवंती के घर के सामने पड़ता है। वहीं खिड़की में देखेंगे और वहीं सो जाएंगे। तुमको एतराज न हो, यार ठाकुर, तो आज की रात साथ-साथ बिताई जाए। मेरे पास एक बढ़िया जासूसी उपन्यास भी है।"

करमसिंह ने गौर से पानदेव की ओर देखा—जैसे किसी मुक्तिदाता को देख रहा हो। फिर एकाएक बोला, "यार पानदेव गुरू, महफिलबाजी तो रात को होगी? अभी वक्त कहां काटा जाय?"

"'डैन्जरस पोजीशन' मेरी यह है कि बाबू मुझसे सख्त नाराज हैं और हारे हुए जुवारी को फड़ में वापस लौटते देर ही कितनी लगती है ? डियर गुरू, कोई ऐसा 'प्रोग्राम' बनाओ, यार, कि रात तक का वक्त कहीं शहर की तरफ काटा जाय। बाबू तो अब यहीं, किरपाल गुरू की फड़ में ही आएंगे।"

जलडिग्गी वाले मोड़ पर करमसिंह प्रतीक्षा करता रहा और सोचता रहा। उसे इस बात ने काफी द्वन्द्व में डाल दिया कि पानदेव की प्रतीक्षा करते हुए वह भविष्य जैसी चीज पर सोच रहा है।

पानदेव काफी जल्दी ही लौट आया।

बोला, "डियर, बात बन गई है। मैं बाबू से 'परमिनेण्ट परमिशन' मार लाया हूं। कह दिया है, काकी के घर ही सो जाऊंगा आज। चल अब सात-आठ बजे रात के लिए शहर में मटरगश्ती की जाय। कह तो व्यानी के होटल में चला जाय। तुझे फल्लाश खेलना तो आता है।"

करमसिंह ने फिर गौर से देखा। बोला, "तुम थोड़ी देर इन्तजार और करो, डियर ठाकुर! दस रुपल्ली में फल्लाश क्या खेली जाएगी। मैं जरा घर पर जाकर, और पैसे ले आता हूं।"

पानदेव के लौटने तक करमसिंह चुपचाप सिगरेट पीता रहा। फिर दोनों साथ-साथ चलने लगे। सड़क पर 'पिरूल'[1] के गट्ठर ले जाती औरतों के गुजरने को दोनों ने ही अपने शुरू होते तारुण्य की ऊष्मा में अनुभव किया। बंधी लय में पिरूल वालियों के कटिप्रदेश में उठती लहरों को देखने में उन्हें अपने भीतर की स्त्रीवांछा के साक्षात्कार की सी अनुभूति होती रही।

जेल वाली सड़क पर एक किनारे चलते हुए, उधर से जाती गांव वालियों और उधर से आती शहरवालियों की पंक्तिवद्धता के बीच से गुजरते हुए दोनों को ही अपनी-अपनी वयःसंधियों पर से गुजरते होने का अहसास हुआ। एक रहस्यमयता के अपने लिए उजागर होने की सी आह्लादमयता में दोनों को पता ही नहीं चला कि कब गिरजे तक आ पहुंचे हैं।

---

१. चीड़ के तिनके।

पाच बजने के ठनाकों को भी अस्तित्व में उन्होंने अपनी ही रोमांचक *मनोदशा के पार्श्वसंगीत की तरह सिर्फ सुना ही नहीं,* अनुभव किया।

गिरजे वाले दोराहे पर आते ही नन्दू सागवाले की दुकान देखकर, फिर एकाएक करमसिंह को अपना पीछे छोड़ दिया गया हिस्सा याद आ गया। मां पर न जाने क्या बीत रही होगी।

तभी सामने से रेवाचरन पांडे दिखाई दे गए, तो पानदेव ने बड़े चातुर्य के साथ करमसिंह का हाथ दबाया। एक बार पीछे मुड़कर देखा। रेवाचरन अपने लम्बे कद में सौम्य गति में चले जा रहे थे। गिरजे के मोड़ पर से उनके ग्रोझल होते ही, पानदेव ने होंठों को गोल कर, लम्बी-सी सीटी बजाई।

"क्यों, क्या बात है, पानदेव गुरु ?"

"डियर ठाकुर ! इस कैंचीमार पण्डित को जानते हो ? आजकल हमारी देवाल में इसकी और श्यामा डेरे वाले की बड़ी चर्चा है।"

"मगर श्यामा मिरासिन तो शादीशुदा है, यार गुरू !"

"शादीशुदा होने से डेरेवालियों को क्या फर्क पड़ता है ? नाचने-गाने का पेशा करनेवाली औरतों और हम लोगों के घरों की औरतों में बहुत फर्क होता है, ठाकुर ! अब क्या तुम समझते हो कि जिस उम्र में आनंदी है—हमारी-तुम्हारी बहन कोई वैसे महफिलबाजी कर सकती है ! ···ये पण्डित महाराज पैसे वाले हैं, सुना है। श्यामी डेरेवाली आजकल देवाल की बाजार में कम निकलती है। डेरेवालियों की तरह महफिल में नाचना-गाना भी बन्द कर दिया है। आती भी है, तो बड़े घर की बहुओं की तरह संवरकर आती है। जिसको शायर लोगों ने 'वोमेन मेण्टीलिटी' कहा है, वह बहुत विचित्र चीज है, डियर !"

"आज तो, यार पानदेव गुरु, तुम बड़े ग्यानी आदमी की तरह बातें झाड़ रहे हो !"

"डियर ठाकुर, 'ए फ्रैण्ड इज ऑलवेज लोयल' कह रखा है—किसी से कहना नहीं, गुणवंती का आज करीब-करीब अट्ठार रुपये का सौदा मैंने उधार दे दिया है। गुणवंती जब मुझसे सौदा ले रही थी, तो मैं वहीं 'इमेजिन' कर रहा था कि औरतों को पटाने का काम कितना 'एडवेंचरस'

होता होगा !"

सामने से आती मोटर के कारण, दोनों को एकदम दीवार से सट जाना पड़ा। नंदादेवी के दोराहे पर से त्रिपुरसुन्दरी देवी के मन्दिर वाले रास्ते को पकड़ते हुए, दोनों ने सिगरेट सुलगा ली और सयानों की तरह आगे बढ़ गए।

९

'आज बैसाख की [illegible] है, [illegible] [illegible] का दिन है। इसे शुभ दिन कहा गया है। नंदन [illegible] को [illegible] कहते हैं [illegible] शुभमानी दिन भी कहा गया है। मैं [illegible] [illegible] हूँ, [illegible] है [illegible] तेरे लिए अच्छा ही दिन आया है।" कहते हुए गुनवंती ने [illegible] के पनौरे वाले हुक्के को अपने हाथों में [illegible] [illegible] [illegible] सामने नंदादेवी-नंदाकोट की श्वेताम्बर पर्वत श्रेणियों की ओर [illegible], चबूतरे पर बैठ गई।

आनंदी चाय का पानी चढ़ा चुकी थी। [illegible] अभी सोए पड़े थे। रात अच्छा-खासा अभ्यास करती रही थी आनंदी, लेकिन इस वक्त उनके चेहरे पर सुबह की ताजगी भरी थी।

गुनवंती ने कुछ देर नारियल गुड़गुड़ाने के बाद, कोयलों को एक लम्बी फूंक मारी और उड़ती चिनगारियों को गिनती सी बोली, "[illegible] तेरे कान पकाकर क्या करूँगी, अन्नो! थोड़ा [illegible] का बहुत समझना होता है, तब आदमी से अपना वक्त कटता है। तेरी जो कुछ भी तैयारी है, [illegible]

गई। रानपुर के डेरेदारों के बच्चे तेरी उम्र तक [illegible] [illegible] लगाने लगते हैं। जो पारखी होंगे, टूटा-फूटा जो कुछ [illegible] है, तवज्जो ही करेंगे। चंद्रावली मारग में तेरा [illegible] [illegible] मुझे [illegible] रहा था। राग में भी वर-वधू की तरह ग्रह मिलाने होते हैं, [illegible] है। खैर, इस वक्त इतनी लम्बी दास्तान क्या सुनानी है। [illegible] मौसिकी की जानकारी ज्यादा से ज्यादा [illegible] [illegible] [illegible] बुलाने को तो, खैर, मैं दस-पांच शहर के गुणी लोगों को भी [illegible]

थी, लेकिन घर की लाचारी ने मार रखा है। शहरी लोग रहेंगे, तो फौजी लोगों की बैठक ठीक से नहीं हो पाएगी। इस शहर का पानी बहुत ही उजाड़ किस्म का है। फौजी लोगों का जी जमेगा नहीं, तो बूट खटकाते हुए चले जाएंगे। थोड़े में तू यों समझ कि यह बरकत की बैठक है। तेरी एक अच्छी बैठक मैं आते सावन में करवाऊंगी। उसमें सिर्फ गुणी लोगों को बुलाया जाएगा। जहां तक हो सकेगा, श्यामी से कहकर, उसके डेरे में रखवाऊंगी। सुना है, बड़ी जगह हाथ पहुंचा लिए हैं उसने।"

जैसे भविष्य की किसी उड़ान में खो गई हो, गुणवंती कुछ देर चुपचाप तमाखू पीती रही। आनंदी ने चाय का गिलास आगे बढ़ाया और बोली, "बैठक के लिए चाय-पानी का जुगाड़ कुछ लगाया हैं, मां ?"

गुणवंती का चेहरा थोड़ा-सा खिच गया। बोली नहीं। चाय का गिलास दायें और नारियल बायें हाथ में लिए कुछ देर सोचती रही। आनंदी चुपचाप खड़ी, उसकी ओर ताकती रही। इस बात का अहसास होते ही कि लड़की के मन में उदासी नहीं भरनी चाहिए, गुणवंती ने नारियल एक ओर रख दिया और चाय का घूंट भरकर बोली, "चींटी को कन, हाथी को मन देने वाला सबकी देखता है, अन्नो! हमारा भी दाता वही है। पांच रुपये तो मोती भाई ने दिए हैं, लेकिन इनको अगर बैठकबाजी के खर्चे में फूंक दिया जाता है, तो कौन जानता है, कैसी आपद हो। चारों तरफ से उधारी-करजे के रास्ते बंद देखकर ही, तेरे पांवों की जोड़ी का आसरा लिया है।···लेकिन सबकी सुनने वाला हमारी भी सुनेगा। कल शाम जब मैं लौट रही थी, तो कुशलदेव का बड़ा बेटा पानदेव मिल गया था। बाप तो मक्खीचूस है, लेकिन बेटे की हथेली में छलनी के छेद दिखाई पड़ते हैं। सोच रही हूं, चीनी-सूजी-घी-चायपत्ती-मसाले जैसी चीजों का जुगाड़ उधारी में पानदेव कर देता, तो बात बन जाती। तेरा जाना-पहचाना है।"

गुणवंती ने आंख गड़ाकर देखा, तो आनंदी बोल उठी, "बचपन में तो महाखिलंडरा था।"

"अब कौन-सा सयाना हो गया! बामन-बनिये की औलाद तो कभी खालिस बनिया हो नहीं सकती। या तो जीरे पर धनिया चढ़ाएगी और

या अदारफी की सुपारी बनाएगी। स्यामी जिस वामन के पीछे लगी है, सुना है—सुना है क्या, अक्सर बाजार आते-जाते में देखी भी है उनकी दुकान। कौन, जाने लालता कह रही थी कि या मोतिया ही—सीजर ही पीती है आजकल। खैर, यह तो मानी वात है कि हम डेरे वालियों में जो हुनरमंद निकल जाती हैं, रईसों के नजदीक पहुचना मुश्किल नही रह जाता। दूसरो की क्या कहूं। मैं खुद कुवर जी के हाथों की अंगूठी पहन चुकी हूं। कैसा तो हीरे का सा नग था उसमें। अट्ठार रुपल्ली में गिरवी पड़ी थी तेरे वावू के मरने के साथ'''आज तक नही छूटी।'''खैर, छोड़ बीती वातों को। भाइयों को उठाकर, चहा पिला दे। वक्त की वात होती है, चेली! जिस साल ये दोनों पेट में थे, सेराघाट के कुवर साहव के यहा बुलाहट हुई थी। गए, तो तीन महीने वहीं बीत गए। वावू तेरे साथ ही थे। इन दोनो की पैदाइश वही हुई। कुंवर को मेरा मेघमल्हार 'ए-ए-अदरा-वदरा, वरसे'''पिया के मिलन को ऐरी सखी, जियरा-आ-आ '''तरसे''' कुवर साहव को वहुत पसन्द था। भरे सावन में ही ये दोनों पैदा भी हुए थे। कुंवर साहव ने ही इनका नाम अदरा-वदरा रखा था।"

गुणवती अतीत मे झाकने लगी थी। आनदी चाय के गिलास लेकर, गोठ मे सोए भाइयों की ओर वढ़ गई।

दोपहर वाद, गुणवंती देवाल की तरफ वढी। आज, इस वक्त, अपेक्षाकृत साज-संवार के साथ वह घर से वाहर निकली थी। दुकानों की वस्ती की तरफ जाते हुए भी यह सोचती ही जाती थी। लगातार उसे यही लग रहा था कि वेटी के कदमो के भविष्य की ओर वढ़ते देखना, खुद को अतीत मे जाते देखना है।

कब्रिस्तान के पास पहुंचते-पहुंचते, गुणवंती ने देखा कि वैद्यराज सोमदत्त कान मे जनेऊ डाले वापस लौट रहे हैं।

गुणवंती ने 'सेवा मानिए' कहा, तो वैद्यराज ने गौर से देखा और बोले, "अरे वा गुणवंती, आज तो तूने दुलहिनो का जैसा शृंगार कर रखा है। गुलाव मास्टर की आत्मा कही स्वर्ग से देख रही होगी, तो मोहित हो रही होगी।"

गुणवंती बस्ती की तरफ निकलने में सबसे पहले वैद्यराज से ही टकरा जाने से खिन्न थी, लेकिन फिलहाल न अपना मन खराब करना चाहती थी, न वक्त। उल्टे-सीधे जवाब देने से वैद्यराज का जी खट्टा कर देने वाली बातें सुननी पड़ेंगी, यह सोचकर गुणवंती ने विनोद से ही पार लग जाना ठीक समझा, "द, गुलाब मास्टर से ज्यादा मोहित तो आप दिख रहे हैं। उधर विकट वन की तरफ जाने की जगह, यहां कब्रिस्तानों के मसान की तरफ झाड़ी फिरने कहां चले आते हैं आप? कभी कब्रिस्तान के चौकीदार डैनियलसिंग ने देख लिया, तो मुश्किल हो जाएगी।"

वैद्यराज ने लोटा मांजना शुरू कर दिया था। एकाएक बोले, "आज तो तेरे घर बैठक होने वाली है, शायद गुणवंती?"

गुणवंती वैद्यराज के संक्षिप्त तथा हितचिंता की सी गम्भीरता में पूछे इस आकस्मिक सवाल से कुछ क्षणों को थमी ही रह गई।

बोली, "हां, गुसांई, रखी तो है। हम डेरे वालियों की तो यही एक खेती है।"

"होई है सोई, जो राम रचि राखा।" कहते दाईं ओर की पगडंडी पर बढ़ जाते वैद्यराज को गुणवंती कुछ क्षण देखती रही और फिर तेज कदमों से कुशलदेव की दुकान की ओर बढ़ गई।

शाम होने से कुछ पहले घर पहुंचते ही गुणवंती ने बाहर, सड़क पर से ही आनंदी को आवाज लगाई, "अन्नी!"

आनंदी बाहर निकली तो देखा, गुणवंती ने सिर पर पोटली रखी है और दायें हाथ में भी सामान थमा है। तेजी से आगे बढ़कर, आनंदी ने सामान उतरवा लिया।

ऊपर तल्ले की सीढ़ियां चढ़ते हुए, गुणवंती ने गोठवाले अपेक्षाकृत लम्बे कमरे को देखा और बोली, "खूब ठीक से साफ कर दिया है ना गोठ तूने? अच्छा होता, दीवालियों में चूना करवा लेते। हमारी सोची कहां होती है। बरसों से कंगाली डेरा डाले बैठी है। आज तो, भगवान लम्बी उमर करे, पानदेव बेचारे की—बामन बनिये के घर में। विष्टों-रजवारों का सा कुंवर निकल आया है। कहने लगा, 'गुणवंती, जो तुझे चाहिए, एक पर्ची में लिखवा दे।'...अन्नी, तू अभी किसी से जिक्र मत करना कि

उधारी पानदेव लला ने दी है। बिरादरीवालियां आएंगी, तो सबसे पहले यही टटोलेंगी कि हाय, बड़ेदारों की सी दावत का सामान कहां से आ गया ? पानदेव लला तो कहता था कि 'अभी हमारे बाबू से भी जिक्र न करना।' देवाल बाजार की तरफ जाती है, तो कभी-कभी 'सेवा मानिए' कह आया कर, जब अकेले में बैठा हो।"

फर्श पर पालथी मारकर बैठते हुए, गुणवंती ने सारे सौदे को अपने सामने फैला लिया और आनंदी से डिब्बे-थाली-देग मंगवाकर, सहेजती रही, "सूजी बड़ी दानेदार है। बढ़िया ढंग से गोला-सौंफ डालकर बनानी है। गुटकों के मसाले जरा चटाकदार ही रखना। अरे, यारो, गुलाब उस्ताद मर गए, उनके नसीब में अपनी लाडली का यह सगुन देखना नहीं लिखा रहा होगा, लेकिन गुणवंती तो जिंदा है। मैं भी दिखा देना चाहती हूं कि गुणवंती को उजड़ा हुआ समझने वाले देखें अपनी आंखों से खुद कि हां, जिसने देखा-सुना होता है, उसकी नजर और नीयत कैसी होती है। मेरी देली में पांव पड़े कभी भगवान जी के, तो सारी बिरादरी को जेवनार कराके दिखा दूंगी कि कमाने को कौन नहीं कमाता, लेकिन खर्च करने की भी एक तमीज होती है।···ला, एक घूट चहा बनाकर पिला दे तो। सौदा लेकर जल्दी लौट आने के चक्कर में पदम ठाकुर की दुकान तक भी नहीं जा पाई। जाती हूं, तो चहा-पान को जरूर पूछ लेते हैं। ये तेरे दोनों भाई किधर निकल गए ?"

गुणवंती का चेहरा इस वक्त संतोष-भरा था।

आनंदी ने बताया कि शायद, शहर की तरफ निकल गए हैं, जल्दी ही लौटेंगे।

जब तक में आनंदी चाय बना के लाई, गुणवंती ने सूजी बीन ली थी। गोला कतरने की तैयारी करते हुए, चाय का गिलास उसने बड़े जतन से हाथ में लिया। बोली, "सूजी-गुटका-पूरी बनाने में तो ललना-चांदकौर-रेशमा लोग हाथ बटाएंगी ही। खाने का इंतजाम तो, खैर दो-चार जनों का ही करना है। रमदिया हौर तो खाएंगे ही। तू एक बात का ध्यान रखना शुरुआत सरस्वती वंदना से ही करना। अभ्यास तुझको करवा ही चुकी हूं। उसके बाद छोटे अलापों के साथ मालकौंस या चंद्रकौंस से

एक गा देना। इसके बाद एक फिल्मी, एक गजल वही गुलाम उस्ताद वाली—'गजब किया, तेरे वादे पर ऐतबार किया!'...और फिर एकाध पहाड़ी, बस, इतना काफी होगा। बीच में तुझे थोड़ा आराम देने को एकाध गाना दूसरों से गवा दूंगी या सारंगी पर बदरिया ही कोई गत बजा लेगा। हारमोनियम लेके नूरे आ जाता है, तो ठीक ही है। वैसे तो मुसलमान लोग अपनी बात के पक्के जरूर होते हैं।...धूनी के बंगले की तरफ कल गई थी, तो कहती आई थी।"

आनंदी पतीली में आलू भरने लगी थी कि एकाएक गुणवंती उठ खड़ी हुई। बोली, "ला, अन्नी, बताशों वाली पुड़िया इधर ला। दो सींक अगरबत्ती की निकाल दे। इकन्नी कहीं शायद, पड़ी होगी मेरे पास ही। जरा भूमिया देवता के दरबार में दीया-बत्ती कर आऊंगी। सांझ होने ही वाली है। सूरज महाराज स्याही धूरे से लग गए हैं। तू भी जरा तुलसी के गमले में दीया जला देना मेरे वापस लौटने तक। फौजी लोग तो, मैं समझती हूं, वही आठ-नौ बजे तक आएंगे। आज तो चांदनी रात है। कोई कारज करना हो, भगवान का नाम लेकर ही करना चाहिए।"

पाताल देवी की तरफ नीचे उतरते हुए, गुणवंती की नजर एकाएक हिमालय श्रेणियों की ओर गई। इस वक्त नंदादेवी-नंदाकोट की श्रेणियां बादलों से ढंकी हुई थीं।

गुणवंती ने बैठक की तैयारी पूरी कर ली थी। आनंदी को उसने कभी बड़े अरमान से संजोकर सिलाई हुई बेलदार मखमल की घाघरी, मखमल की ही आंगड़ी (ब्लाउज) और साटन का छोटा पिछोड़ा पहना-कर, एकदम गुड़िया की तरह सजा दिया था। बुरे दिनों में भी गिरवी पड़ने और बिकने से बचाई हुई छोटी-सी बुलांकी भी पहना दी थी। आंखों में गहरा काजल, कपाल में चमकीली बिंदी और हथेलियों में मेहंदी के फूल—'न लगे, किसी की ओछी नजर तुझको।'...सजाने-संवारने के बाद, देवी-प्रतिमा का आभास देती-सी आनंदी को देखते ही विह्वल होकर, माथा चूम लिया था गुणवंती ने। सजी-संवरी आनंदी गलीचे पर बैठी हुई थी और गुणवंती को लग रहा था, कि आज उसने अपने-आपको

हमेशा-हमेशा के लिए अतीत में समेट लिया है। जैसे ही बैठक शुरू होगी और आनंदी सरस्वती-वंदना में अपने होंठ खोलेगी—गुणवंती को कितना अलौकिक लगेगा वह क्षण ! हे माता कासार देवी, तू ही लाज निभा देना, मैया ! गुणवंती ने धीमे से अपनी आंखों को पोंछ लिया।

एक नजर फौजी अफसरों की प्रतीक्षा में बैठे बिरादरी के लोगों पर डालकर, गुणवंती ने चारों ओर दूर-दूर तक देखा, जैसे फौजी लोग कभी भी, कहीं से भी प्रकट हो सकते हों।

अर्दरिया और बदरिया भी आज जरा धुले कपड़े पहनकर, आनंदी के दायें-बायें बैठे हुए थे। सज-सवरकर, नुमाइश में रखी गुड़िया जैसी वह चारों ओर से देखी जा रही थी और दबे स्वरों में लोग अपनी-अपनी राय भी व्यक्त कर रहे थे। फौजी लोग समय से आ गए होते, तो अब तक बैठक शुरू हो चुकी होती। प्रतीक्षा में रहते हुए आनंदी को कुछ असुविधा हो रही थी। बिरादरी के लोगों के आ जाने से जहां एक ओर वातावरण निजू-सा लग रहा था, वहीं कोई स्वर, बोल और लय गलत पड़ जाने पर टीका-टिप्पणी की आशंका भी मन को असन्तुलित कर रही थी। रेशमा मौसी पीठ-पीछे बैठी गुनगुना रही थी और ललिता खटका दे रही थी।

आने को मोहिनी भी आई थी, लेकिन उसने गुणवंती से पहले ही कह दिया था कि वह चाय-पानी-पान-सिगरेट के बन्दोबस्त में हाथ बंटाएगी। रमदिमा बदरिया की बगल में बैठा, चरस-भरी सिगरेट पीता हुआ, निहायत इतमीनान में दिख रहा था। अधमुंदी आंखों से कभी-कभी वह चारों ओर क्षण भर के लिए देख लेता था और फिर अपने-आपमें समाधिस्थ हो जाता था।

'बहुत पंचम सुर में जैसी मिला करके रख रखी थी बसंती काकी ने अपनी छोरी, ऐन शुरुआती महफिल में ही टें बोल गई।' आनंदी के कानों में कपड़े-जेवर पहनाते-पहनाते दिए गुणवंती के उपदेश अभी भी गूंज रहे थे, 'जलते हुए कोयलों पर छोड़ने पर भी जो धूप गंध नहीं देती, चेली ! उसका खरीदार दुबारा नहीं खरीदता। भरी महफिल में जिस डेरेवाली का इल्म लोगों की नजर न बांध ले, उसका पेशा कभी नहीं

चल सकता। और कई डेरे वालों की छोरियां तो पैसे-पैसे को बचपन से ही गली-गली में नाच दिखाती फिरती हैं, मगर मैंने तुझे हमेशा मंदिर की मूरत जैसी घर में ही आसन दे के पाला-पोसा है। इसलिए, कि तेरी कदर नहीं घट जाए। बहुत सस्ते आटे में चुक्कड़ ज्यादा होवा है।···सुन, चेली! जो बैठक में आएंगे, उनके अलावा भी तमाम बिरादरी के लोगों से ले करके, दुकानदार और चलते-फिरते लोगों तक न जाने कितने डेरे की तरफ आ-आकर कान-आंख लगा जाएंगे, कि देखें, गुणवंती की बेटी में कैसा हुनर आया है?···और जो फौजी लोग आने वाले हैं न, कोई किसी गांव का होगा, कोई किसी गांव का। कोई सौर अरकोट, कोई हाट, कोई सेराघाट का। कोई किसी बटालिन में होगा, कोई किसी बटालिन में। वहां से अपने-अपने ठौर-ठिकानों को लौटेंगे, तो अपने-अपने यार-दोस्तों में तेरा जिकर करेंगे, कि यार, शहर में फलानी का नाच-गाना सुना था। इल्म वाला तो अपनी ही ठौर बैठा रहता है, मगर इल्म सच्चा हुआ, तो जस अट्ठार कोस अपने-आप पहुंच जाता है। अगरबत्ती तो अगरदान में ही सुलगती रहती है, मगर उसकी खुशबू सारे कमरे में भर जाती है। कस्तूरी कस्तूरे की नाभि में बंद पड़ी रहती है, मगर हवा जिस तरफ बहे, कस्तूरी की गंध सारे बन में फैल जाती है, चेली!'

गुणवंती पान के बीड़े और सिगरेट की डिबियां एक थाली में सजाने के बाद, फिर बाहर झांक आई, मगर फौजी लोग अभी भी नहीं दिखाई दे रहे थे। अंदर लौटकर, गुणवंती ने फिर याद दिलाया, "अम्मी, यह तेरी पहली बैठक है, लली! पहले माता सरस्वती की बंदना ही करना। ऐसे हाथ जोड़कर, आ-आ-आ—आवा वे, भर दैणा है जाए तू, ओ माता सरोस्वती-ई-ई—माई···गाना। यह अपनी कुलदेवी की सेवा का फूल है, इसे बड़ी श्रद्धा और जतन के साथ माई के चरणों में चढ़ाना चाहिए, चेली!···"

१०

ध्यानी के होटल में ही खाना खाकर, दोनों दोस्त रात के लगभग आठ बजे वहां से चले, तो बहुत प्रसन्न थे। करमसिंह ताश में लगभग चार सौ रुपये जीत गया था।

"डियर ठाकुर, बाप का गंवाया बेटा लौटाता है। न सही साले पूरे डेढ़-दो हजार—चार-पांच सौ के करीब तो तुमने मार ही दिए। पहली ही बार बाजार की फड़ में खेल पर भी तुम अठंगी-धाकड़ जुवारियों की तरह खेल जाओगे, मैंने नहीं सोचा था। डर रहा था, कहीं जेब के पचपन रुपये जाते रहें, तो आनंदी की महफिल में जाने का क्या होगा।··· *यों तो गुणवंती को सौदा मैंने उधार दे ही रखा था। हारा मैं भी नहीं हूं।* बीसेक रुपये बढ़ती ही होंगे। इसका मतलब यह हुआ कि आनंदी हम लोगों के लिए शगुन वाली सिद्ध हो रही है। खास तौर पर तुम्हारे लिए···"

पानदेव हंसा, तो करमसिंह भी हंस दिया। बोला, "यार, अब इस वक्त मैं बाबू की 'पोजीशन' का अंदाजा लगा रहा हूं। साग बेचा होगा, कितने मिले होंगे? मुझे सवा तीन बैठे, उनको ज्यादा से ज्यादा पांच-सात बैठे गए होंगे। दस-बीस हो सकता है, उनके जेब में पड़े हों। कोई तुम्हारी तरह गल्ले की संदूक थोड़े रखा रहता है हमारे घर में। बाज वक्तों में सालों चवन्नी दुर्लभ हो जाती है। अब तुम सोचो कि जब डेढ़ हजार की डैया गंवाकर, हमारे बाबू गांव पहुंचे होंगे और मेरी हरकत पता चली होगी, तो उन्होंने मां की क्या दुर्गत की होगी? हम लोगों के यहां, डियर, औरतों की कोई कद्रदानी नहीं। हमारे बाबू एक तो जुवारी, दूसरे शराबी और रण्डीबाज भी हैं···।"

पहली बार पिता के लिए इतना सख्त शब्द कह जाने पर, उसे कुछ

गलत कह जाने का अहसास हुआ, लेकिन पानदेव की बातों में सब खो गया, "डियर, सब कुछ आदमी सीखते-सीखते ही सीखता है। जुवारी तो आज हम लोग भी हो गए हैं, कल को रण्डीबाज भी हो सकते हैं। आदमी जुवा ऐसे ही नहीं खेलता, डियर!...इसकी भी एक रफ्त होती है। सवेरे गांव से सब्जी की डलिया मार तल्ली-मल्ली बाजार घुमाते-घुमाते तुम्हारी चुटिया बैठ गई होगी.. और वहां, स्साली एक बेगम की 'ट्रेल' ने सौ-डेड़ सौ बरसा दिए। बच गए कहो, यार, कहीं उसके पास बादशा की 'ट्रेल' निकल आई होती...खैर, डियर, मेरी एक बात मानोगे?"

सड़क किनारे के लैम्पपोस्ट के सहारे खड़े होकर, पानदेव ने करमसिंह का हाथ जरा जोर से दबाया, "तुम्हारी-हमारी दोस्ती को इस दुनिया की कोई ताकत नहीं तोड़ सकती है।"

"बोलो तो सही।"

"बात ये है, डियर ठाकुर, कि ये जिंदगी एक सफर है।"

"सर्टेनली, डियर गुरु!...मगर तुम गजबज में क्यों पड़े हो? बोलो, सौ-पचास तुमको दे दूं?"

"नहीं, डियर! पानदेव को क्या तुमने पैसों का बेटा समझ लिया, प्यारे? पैसा मेरे बाप कुशलदेव के लिए पैसा है—पानदेव के लिए है हाथ का मैल।...मैं तो, डियर, तुमसे कहना चाहता था कि एक अद्धी लेकर, जेब में डाल लेते हैं। अभी एलारशा की दुकान खुली होगी। हमारे चाचाजी वाले घर में ऊपर का कमरा बिलकुल एकांत में है। बिल्कुल थोड़ी-थोड़ी ले लेंगे..."

वापसी में दोनों गिरजाघर के अगले चौराहे से रानी धारा वाली सड़क पर मुड़ गए। चांदनी रात में का चलना, दोनों को, किसी स्वप्न में चलने जैसा प्रतीत हो रहा था। लगता था, इस छोटे शहर का किसी विशाल 'लैण्डस्कोप' की सी अलौकिकता में प्रतिबिम्बित होता हुआ परिवेश, दोनों के लिए, निहायत संक्षिप्त तथा आत्मीय हो आया है।

पाकर के वृक्षों की छाया में पांव रखते हुए चलना। कल्पना में आनंदी के जिंदा डांस की महफिल में कला पारखियों की सी मुद्रा में बैठना। हारे हुए जुआरी की नींद में मुर्दों की तरह पड़े बाप के पास कल

सुबह का भरी जेब लेकर पहुंचना। यार करमसिंह, तुझको सचमुच पान-देव गुरु की दोस्ती का शुक्रगुजार होना चाहिए।

बच्चों को टाफियां देने के बाद पानदेव ने काकी से कह दिया कि दोनों के लिए रोटियां बना दे। गाहे-बगाहे पानदेव यहां आ जाया करता था। खुद चाची भी बुला लाती थी, मां भी भेज देती थी, 'पापा [illegible] ने ठहरें, एकांत का घर हुआ।'

ऊपर वाले कमरे की चाबी लेकर, पानदेव करमसिंह को साथ लेकर आगे बढ़ा, तो चाची ने कहा, "क्यों रे पानू, यह तो तिरलोकसिंह का बेटा करमिया जैसा दिखाई दे रहा है।"

"जैसा क्या है, वही है, काकी! इस साल अब [illegible] भी 'प्राइवेट' भरवाना है। 'जोइंट स्टडी' करने का इरादा है। अगले साल तो कालेज में दाखिल होने का संकल्प कर लिया है।" कहता हुआ पानदेव [illegible] गया।

दरवाजे की कुण्डी भीतर से चढ़ाकर, थोड़ी देर तक, खिड़की से दोनों ही गुणवंती के घर की ओर झांकते रहे। वहां इस वक्त, कोई खास हल-चल नहीं थी। हां, चंचला देवरानी का घर तो पीछे से था, लेकिन वहां से गाने-नाचने की आवाजें आ-आकर, आसपास के पेड़ों पर चमगादड़ों की तरह लटकती-सी महसूस हो रही थीं।

थोड़ी ही देर में चाची खाना ले आई, तो पानदेव बोला, "अब तुमको बार-बार ऊपर आने की कोई जरूरत नहीं, काकी! हो सकता है, हम लोग खा-पीकर, यहीं से 'विजय का डंका' देखने निकल जाएं। पीछे वाले रास्ते से निकल जाएंगे, तुम चिन्ता न करना। [illegible] कुछ [illegible] सीखने लगा है, या नहीं?"

"हां, उस दिन तू ही स्लेट लिखकर रख गया था, उसीमें कुछ किया होगा। सवेरे जरा कान खींच देना तो। इस वक्त तो सो गया है। तुम लोगों को रोटी-साग कम पड़ा…"

'अरे, नहीं, काकी! पर्याप्त है सारी सामग्री। अब तुम जाओ। हम लोग शीघ्रगति के कुछ 'कर्त्तव्यों' की चर्चा कर रहे हैं। हां, यार, तू कह रहा था कि किसी मकान का दूसरा [illegible]

'वाई-डब्ल्यू-जेड' का समीकरण…"

चाची के जा चुकने का इतमीनान होते ही, दोनों ने खूब जोर का ठहाका लगाया। दरवाजे की सिटकनी चढ़ा आने के बाद पानदेव बोला, "बाई गाड, ये पहाड़ी औरतें एकदम देवी तुल्य होती हैं, प्यारे!"

कांच के गिलासों में थोड़ी-थोड़ी डालकर, पानदेव ने आमलेट की पुड़िया खोल डाली और कहीं किसी हवामहल में बैठे रईसों की तरह दोनों दोस्त, खिड़की में से, लगातार गुणवंती के घर की ओर आंखें लगाकर बैठ गए। वहां से कभी-कभार कुछ संगीत की लहरें जैसी उठती थीं, लेकिन साफ दिख रहा था कि आनंदी न तो गा रही है और न नाचती है। गैस के हण्डे की तेज रोशनी में जितने लोग दिख रहे थे, गुणवंती की जाति-बिरादरी के ही लोग लगते थे। उन लोगों की गतिविधियों में घरापे का सा इतमीनान झलकता था।

थोड़ी ही देर में दोनों ने देखा कि बारात विदा हो चुकने की सी हड़बड़ी में लोग उठ रहे हैं और सभा भंग का सा दृश्य उपस्थित होने लगा है। गुणवंती के गोठवाले कमरे में बैठे बिरादरी वाले एक-एक कर बाहर निकलते तथा कुछ चंचला डेरेवाली के घर की तरफ, तथा कुछ देवाल बाजार वाली सड़क पर वापस मुड़ते दिखने लगे।

"डियर गुरु, नंदादेवी का डोला उठ चुका दिखता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि फौजी लोग आकर जा चुके हों?"

"नहीं, डियर ठाकुर! जहां तक मेरी 'नौलेज' काम कर रही है, मैं समझता हूं, फौजी लोग आए ही नहीं हैं। मेरी वेस्ट एण्ड वाच में साढ़े दस का वक्त हो चुका है। कहीं ऐसा तो नहीं कि आनंदी की महफिल में आने वाले फौजी भी चंचला के डेरे पर पहुंच गए हों?"

"समथिंग इज पॉसिबुल।"

"ऐसा करते हैं, यार, खाना जल्दी निवटा लो। नीचे उतरकर ही देखते हैं कि माजरा क्या है।"

दोनों दोस्त नीचे उतरे, तब हलके नशे में थे। छोटे-छोटे खेतों पर से एक पगडंडीनुमा रास्ता चंचला डेरेवाली के घर की तरफ चला गया था, दूसरा थोड़ा-सा घूमकर, गुणवंती के डेरे पर।

गुणवंती के डेरे की तरफ न जाकर, दोनों चंचला की तरफ बढ़ गए। थोड़े-से फासले पर खड़े होकर, दोनों ने देखा कि चंचला की महफिल जमी हुई है और लम्बे कद का बिशन लम्बू अलग से पहचाना जा सकता है।

"डियर गुरू, अगर जुवा ही खेलना पड़ गया, तो एक न एक दिन इस विशनिया लम्बू की तिब्बती रब्बू की जैसी खाल जरूर उतारूंगा।" तिरलोकसिंह के हारने का प्रसंग याद आते ही, करमसिंह ने प्रतिद्वंद्विता के से तेवर में कहा।

पानदेव ने प्रसंग बदलते हुए कहा, "गुणवंती की बैठक बैठ गई लगती है।"

किंचित् करुणामय होते हुए, दोनों दोस्त गुणवंती के घर की ओर पलटे। मोड़ पर से ही दिखा कि गैस का हण्डा बुझा हुआ है और सिर्फ एक लालटेन की रोशनी उत्सव के बीत चुकने की सी उदासी फैला रही है।

आनंदी भी संभवतः अपनी जगह पर से उठ चुकी थी। दोनों की खोजी आंखों ने पाया कि महफिल के उखड़ चुकने का विषाद गुणवंती के डेरे पर कोहरे की तरह घिरा हुआ है।

गुणवंती न जाने किस-किसको कोस रही थी। उसके दोनों बेटे बाहर की दीवार के ऊपर, निराश मुद्रा में बैठे बीड़ी पी रहे थे।

पानदेव ने कहा, "डियर करम, गुणवंती की हालत देखकर, बहुत अफसोस हो रहा है। यार, डियर, तू एक काम कर सकता है। तू जाकर के जरा गुणवंती को इस तरफ बुला ला। मैं जाता, मगर मेरा जाना कहीं काकी के कानों में पड़ गया, तो बाबू तक शिकायत जरूर पहुंचेगी।···मैं उधर कब्रिस्तान की तरफ वाली गली में खड़ा रहूंगा, तू गुणवंती को वहीं बुला ला। उसको समझा देना, पानदेव गुरू ने बुलाया है। हल्ला-गुल्ला जरा-सा भी नहीं करे। मैं उसे यहां एकान्त में समझा दूंगा, कि इस तरह केकयी का जैसा विलाप करने में कोई फायदा नहीं है। इससे अच्छा है कि वह चुपचाप अपने यहां महफिल शुरू कर दे। पहले-पहले दिन का मनमुटाव अच्छा नहीं होता है।···और, यार, उसका गोठवाला कमरा खाली

तरफ एकदम एकान्त में पड़ता है। उस तरफ को काकी होरों के आने-जाने का रास्ता भी नहीं है। जैसा कि खिड़की पर से सारा नजारा दिखता था—हम दोनों उस गोठवाले कमरे में एक कोने में बैठकर, आनंदी का डांस देख सकते हैं, डियर ! मैं अभी चला जाता, मगर इस समय गुणवंती जरा उखड़ी हुई है। मुझसे भी जोर से बोलने लगेगी, तो पोल खुल जाएगी। यहां एकांत में उसे जरा ढंग से समझा दूंगा।…और, डियर, एक काम और करना है। वहां से हम जल्दी लौट ही आएंगे, लेकिन खुदा न खास्ता कहीं देर हो जाती है और काकी पूछ लेती हैं, तो कह देना, नाइट-शो सिनेमा देखकर लौट रहे हैं।"

"माफ करना, यार गुल, जम्बू के बेटे तो आज हम दोनों हो गए हैं। आज का तो स्साला पूरा दिन फिल्मी हो गया है।" कहता हुआ करमसिंह गुणवंती के घर की ओर बढ़ गया।

इस वक्त बैठक के कमरे की देली में बैठी हुई गुणवंती स्वगत भाव से बड़बड़ा रही थी, "हो गए, यारो, ये पलटन के सिपाही-होलदार स्साले अपनी महतारियों से मुस्यार[1] हो गए। उस गोतिया फटली[2] ने भी रख ली आज अपनी आभा।…मेरी तो आज वही दुर्गत हो गई, यारो, कि मूंडी भिगोकर तैयार बैठे रहे, मगर नाई का कहीं पता नहीं। मैं तो बयाने का भरोसा कर बैठी। मोती उस्ताद तो अत्तर के नशे में धुत भोटिया धरम-शाले में औंधा पड़ा हुआ होगा और उन अपनी महतारियों के खसम फौजियों का रात के ग्यारा-बारा बजे तक कहीं नामोनिशान नहीं है। तबले-सारंगी का सुर मिलाते-मिलाते अदरिया-बदरिया की, गले का सुर मिलाते-मिलाते अन्नी छोरी की और पान-सुपारी-सिगरेट, चहा-मिठाई का बंदोबस्त करते-करते मेरी मिट्टी पलीत हो गई, मगर धुआं देखने को तो बहुतेरे आ गए थे, गुणवंती पर बीती का दुख घटाने को कोई नहीं रहा। सब स्साले मुर्गी-गुटकों का भोग लगाकर, पान-सुपारी चबा-चबा, सिगरेट की फूंक लगाते हुए मसानघाट का मुर्दा फूंक चुकने की सी बेफिक्री में अपने-

---

1. प्रसन्न।
2. धोखेबाज।

अपने डेरे को रफूचक्कर हो गए—बेचारी ये मोहिनी-ललता अभी तक बैठी हैं। जाओ, बहना, तुम लोग भी फौजियों के हाड़ चबा-चबाकर अपने घर को जाओ अब। कब्रिस्तान में गुज़रता रास्ता है, बाल-गोपाल का नाच। जो होनी होनी है, होके रहनी है। आनंदी छोरी से भी कह दो, बहना, कि फौजियों के न आने से कोई राड थोड़े हो गई हैं। रोना-धोना अच्छा नहीं होता है। आदमी को तो मौत भी बर्दाश्त करनी होती है।"

करमसिंह पर एकाएक नजर पड़ी, तो गुणवती देहरी पर से उतरकर चली आई। वह बाड़े में खुबानी के पेड़ के सहारे खड़ा था, लगभग ओट में होता हुआ।

"क्यों, कौन हो तुम भैया? यहां शिकारियों का जैसा दम साधे क्या देख रहे हो?"

"मैं पानदेव गुरू का दोस्त हूं। हम दोनों तुम्हारे यहां महफिल…"

"द, महफिल तो फौजियों की गति में लग गई, गुसाईं! क्यों, पानदेव लला कहां है? तुम किसके कुंवर हो?"

"मेरे बाबू को ठाकुर तिरलोकसिंह कहते हैं।" कहते हुए करमसिंह ने जोरों से सिगरेट का कश खींचा। वह अपने ऊपर गुणवती की उपस्थिति का दबाव महसूस कर रहा था। अचानक उसने पैण्ट की जेब में हाथ डालकर बटुवा निकाला और दस रुपये का नोट गुणवती की तरफ बढ़ाता बोला, "ऐसा है, आनंदी की मां! आनंदी को तो हम लोग बचपन से जानते हैं। पानदेव गुरू खास तौर पर इस हादसे से परेशान हैं कि फौजी लोग 'अण्डरग्राउण्ड' हो चुके हैं। उधर चंचलिया की महफिल तो खूब जमी हुई है। हम लोग…"

"द, गुसाईं, उसके यहां तो शराबी-कबाबी-रण्डीबाजों की महफिल है, उसमें जमना ही है। हमारी अन्नी…"

"अन्नी, जहां तक हम लोगों की 'अण्डरस्टैंडिंग' है—बहुत शरीफ लड़की है। इस वक्त तुम जरा तंग में हो, अन्नी की मां। जरा मेरी बातों को गौर से सुनो। पानदेव गुरू आनंदी का डान्स देखना चाहते हैं। तुम सयानी औरत हो। हम लोग घरवाली की निगाह में 'स्टूडेण्ट' टाइप के विद्यार्थी हैं। महफिल तुमको कुछ ऐसे 'एरेंज' करनी है कि ज्यादा दूर

तक फैले नहीं। पानदेव गुरू मेरा इंतजार कर रहे होंगे। ले आऊं उनको?"

"द, तुन कुंवर लोगों के पांवों के तलुवे और मेरी माथा, गुसांई! मैया कासार देवी, तेरे घर देर है, अंधेर नहीं है। तुम जाओ, गुसांई—पानदेव लला को बुला लाओ। मैं बिल्कुल घर की जैसी जुगत करती हूं।"

दुबारा दोनों के वापस आने तक, गुणवंती ने बैठक जमा ली थी। मोहिनी और ललिता आनंदी को सहारा देती-सी बैठी थीं। अदरिया-बदरिया सारंगी-तबले पर हाथ रखे बैठे थे, जैसे सनातन रूप से बैठे हों। सभी लोगों ने एक-साथ 'सेवा मानिए, गुसांई!' कहा, तो दोनों को ही अपनी यह अगवानी रोमांचक लगी।

दोनों एक तरफ बैठ चुके, तो आनंदी ने, किंचित् झुकते हुए, 'सेवा मानिए' कहा। दोनों ही अपूर्व राग में डूब गए। बचपन में, और बाद में किंचित् बड़ी होने पर भी, सामान्य, अधमैले वस्त्रों में दिखाई पड़ने वाली आनंदी इस वक्त कहां थी। इस समय तो महफिल का श्रीगणेश करने की तैयारी में नववधू की तरह संवरी आनंदी की रूपराशि देवीप्रतिभा जैसी अलौकिक लग रही थी। आंखों को झिपा देने वाली। दोनों को ही लगा कि आनंदी की इस अपूर्व उपस्थिति को संभाल नहीं पा रहे हैं। इसी हड़बड़ी में करनसिंह ने फिर दस रुपये का एक नोट निकाला और आनंदी की तरफ बढ़ा दिया। आनंदी संकोच में बैठी ही रह गई थी कि गुणवंती लाड़ से बोली, "चेली, अपनों से शरम करेगी पगली! तेरा तो उजड़ा हुआ आशियाना बसा दिया है कुंवर लोगों ने। थाम ले और माथे से लगाकर, 'सेवा मानिए, गुसांई!" कह।···और फिर अपना शगुन शुरू कर। मया दाहिनी हो गई है—शुद्ध ठाकुर के हाथों से बोहनी हो रही है तेरी!"

आनंदी मां के बताए अनुसार सारा उपक्रम पूरा करने के बाद, अपनी जगह पर बैठती अत्यन्त मोहक ढंग से मुस्कराई, तो गुणवंती ने कहा, "अब, अन्नी, वही 'आदा भर दैणा है जाए तू माता सरोसती' वाली वंदना से बैठक शुरू कर दे, चेली!"

गुणवंती के हाथ जोड़कर, आंखें मूंदते ही बदरिया ने सारंगी पर गज फिराकर, मीठी-सी धुन निकाली और अदरिया ने चक्करदार तिहाई लगाने के बाद, दीपचंदी ठेका शुरू कर दिया। जैसे ही आनंदी ने आलाप

भरा, मोहिनी-ललिता ने रेजगारी उसके सिर पर से घुमाकर, गलीचे पर बिखेर दी। आनंदी के दूसरे आलाप भरने तक, पानदेव ने एक-एक रुपये के कई नोट उसकी तरफ डाल दिए। आनंदी ने पूरा सुर साधकर, गाना शुरू किया ही था कि गुणवती ने बिखरे हुए रुपये बटोरे और दो-दो रुपये अदरिया, बदरिया, इनदिया मोहिनी, और ललिता के हाथों में थमाती बोली, "द, गुसाईं लोगों ने सबका दस्तूर पूरा कर दिया है।"

दोनों ही दोस्तों को यह सब अपूर्व लग रहा था। पहली बार उनकी समझ में यह रहस्य भी आ रहा था कि डेरेवालियों की बैठकों में हिस्सा लेने वाले सयाने लोग कैसा अनुभव करते होंगे। करमसिंह मन में तय कर चुका था कि अब ज्यादा से ज्यादा दस-पाँच रुपये उसे और खर्च करने हैं। सारे परिक्रम के बीच, वह भीतर ही भीतर आने वाले दिन के आमने-सामने होने की तैयारी कर रहा था। जुवे में हारे हुए पिता का सामना करने में जेब में पड़े रुपये सहारा देंगे, यह अहसास उसे सावधान कर रहा था। गुणवंती के पास से लौटकर जब वह आ गया, पानदेव ने भी सतर्क कर दिया था। वह तो आनंदी की आंखों का पहला-पहला साक्षात्कार था, वह दस रुपये से कम का नोट निकाल नहीं पाया। आनंदी की सुन्दर वेश-भूषा की तुलना में उसे अपना पहनावा और भी खल रहा था।

फौजियों की उपस्थिति में कुछ दबाव महसूस कर सकती थी, पानदेव-करमसिंह में उसने एक घरेलूपन की सी प्रतीति अनुभव की और पूरी सरस्वती-वंदना को निहायत संतुलित ढंग से गाया।

गुणवती ने दरवाजा उढका लिया था। सिर्फ खिड़की खुली थी। गैस का हण्डा दुबारा जलाने की जरूरत नहीं समझी गई।

उन दोनों की उपस्थिति और सकोच तथा रोमांच से रक्तिम चेहरों का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा आनंदी पर कि उसने गुणवती वाले क्रम को तोड़कर, सीधे गजल शुरू कर दी। जैसे ही दूसरी पंक्ति 'तमाम रात कयामत का इन्तजार किया' पूरी की थी उसने कि दरवाजे पर दस्तक पड़ी। कोई दूसरा उठे, इससे पहले ही, गुणवती तेजी से बाहर निकल आई।

देखा, शराब के नशे में धुत-से विशन बाबू और उसके दो दोस्त खड़े हैं। गुणवंती ने दरवाजा ज्यों का त्यों बन्द कर दिया और उनके साथ थोड़ा आगे निकल आई। बोली, "अब, ठाकुर साहब, हमारे यहां की बैठक तो एक तरह से खत्म ही हो चुकी है। कैसी रही चंचला की महफिल ? खैर, नाचती तो लाजवाब है। अब हमारे यहां तो फिर कभी तय होगी बैठक, गुसांई ! आज तो जहां तक मैं समझती हूं, वैसे भी रात के बारा बजने वाले होंगे !"

विशन लम्बू, कुछ देर, गुणवंती को घूरता रहा। उसकी पारखी आंखों ने देख लिया कि गुणवंती काट रही है। बिना कुछ बोले, उसने जेब में से ढेर सारे रुपये बाहर निकाल लिए। फिर थोड़ा हंसकर बोला, "गुणवंती, तू जानती है, मैं जालना के सेब के बगीचों से आया हुआ शख्स हूं। मैं तो अपने गांव फालसीमा को लौटने लगा था। हमेशा आधी रात के खबीस की तरह ही लौटता हूं।···अचानक तेरे कमरे में से शमशाद बेगम के गले का सुर कानों में पड़ गया। वहां चंचला के यहां भी चर्चा थी कि फौजी लोग पहुंचे नहीं हैं। फौजियों को, गुणवंती, मार तू झाड़ू। अट्ठार रुपल्ली तनखा पाने वाले संगीत की बैठक में कितना लुटा सकते हैं, मैं आज तेरे घाघरे का अगला पल्ला भर दूंगा—बस, आनंदी की महफिल सजा दे।"

चांदनी में विशन लम्बू सचमुच प्रेत-सा लग रहा था। गुणवंती ने तेजी से कुछ सोचा और फिर 'अच्छा, दो मिनट को आप लोग मेरे साथ आओ, गुसांई !' कहते हुए उन्हें ऊपर वाले कमरे में ले जाकर, बिठा आई, "बस, दो मिनट आप लोग यहां बैठे रहें। जरा आपसी के लड़के लोग आए बैठे हैं, उन्हें विदा कर देती हूं।"

गजल दरवाजे पर दस्तक पड़ते ही रुकी थी, ज्यों की त्यों रुकी पड़ी थी, जैसे कोई परिंदा अचानक हवा में गायब हो गया हो।

गुणवंती की ओर सभी जिज्ञासा से देखने लगे थे। वह धीमे से पास आई। बोली, "फौजी लोग आ गए हैं। अब लाचारी है, बयाना पहले से लिया हुआ है। लला, अब आप लोग इस वक्त अपने घर चले जाइए। आनंदी तो आप लोगों के देली पर की लड़की है। जब कहोगे, जैसे कहोगे,

जितना कहोगे, वाली बात है। अब तमाम फौजी लोगों के बीच जरा पर के बालकों का बैठना शोभा नहीं देता है।"

दोनों दोस्त आगन और बाड़ा पार करते हुए, अपने कमरे में लौट आए, तो पानदेव बोला, "डियर, गुणवंती ने चूना लगा दिया। सोच रही होगी, अब छोकरों से ज्यादा से ज्यादा कितने निकलेंगे। इसीलिए, डियर, मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि दम दे चुके हो, अब मत देना। लेकिन आखिर-आखिर तुम हो तो जुवाड़ी ठाकुर की औलाद!"

करमसिंह कुछ नहीं बोला। वह जैसे किसी कल्पनालोक में अभी भी खोया था। बोला, "गुरु, जो हुआ, सो हुआ। अब मैं तो लम्बी तानना चाहता हूं।"

खिड़की खुली थी। हवा के झोंकों के साथ गाने और घुंघरुओं के बजने की आवाजें कमरे तक पहुंच रही थीं। सुन दोनों दोस्त रहे थे, लेकिन आपस में बोलने की जरूरत किसीने नहीं समझी।

११

नववधू के से शृंगार में मुजरा करती आनंदी को सपने में देखता है या सिर्फ अपनी कल्पना में—इस बात का ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन है। खुली खिड़की में से आकाश को देखना अपने-आपको ही देखने जैसा क्यों लगता होगा ? चांदी की क्या हाल है, साहब ? लगता है, कभी प्रेमी को चोर आंख से ढूंढ़ती स्त्री की तरह उपस्थित होती है और कभी सास की डांटी हुई वहू जैसी गायब हो जा रही है। शायद, बादल लगे हुए हैं। पहाड़ी मौसम का भी क्या ठिकाना है। अच्छी तरह याद है, आनंदी गजल गा रही थी, तब आंगन में बिखरी थी चांदनी। अब कमरे में घुप्प अंधेरा है। आंखें मुंदी हैं। भीतर ही भीतर एक मद्धिम रोशनी आर-पार फैली लगती है। दिखाई देता है कि 'मोशन' में अपने हाथों की अंगुलियों को आपस में जोड़कर, देवीमुद्रा में सिर के ऊपर ले जा रही है और उसे लगता है कि कोई उसे हवा में उठाने की कोशिश कर रहा है।

शायद, अब रात के खुलने का वक्त निकट आ रहा था।

पानदेव की नाक का बजना, करमसिंह को, अपने निजी संसार में व्याघात-सा लग रहा था। एक निहायत मामूली-सी लड़की इस तरह आंखों को बांध लेने वाली निकल आएगी, कौन सोच सकता था। दो वर्ष पहले जब छोटी बहन की शादी हुई थी, तब भी ऐसा हुआ था। काली झगुली और अक्सर ही बिखरे रहने वाले बालों और घर-गोठ तथा खेतों पर के काम की धूल-मिट्टी तथा थकान में जकड़ी रहने वाली बसंती दुल्हन की वेश-भूषा में एकाएक कितनी बदल गई थी ? रोज की ही देखी हुई, लगता था, पहली बार देखी गई है। जिस समय बसंती को डोली में बिठाया गया था—विदाई के लिए—कुसुम करे चटक रंगीन पिछौड़े, राजकन्याओं का आभास कराने वाले मुकुट और सोने के नाथ में

कैसी लग रही थी तब बसंती ?

इस बार की भिटौली देने गया था, दो ही बरसों में उस देवीप्रतिमा लगती हुई बसंती मा की तरह मुर ग्राती लगी।

करमसिह को लगा, भावुक हो रहा है।

गुणवंती डेरेवाली की लड़की को स्मरण करते हुए मा-बहन को याद करने में क्या तुक है!

घर में कभी-कभी इस बात की चर्चा की जाती है कि करमसिह के लिए लड़की देखते रहना है। स्वाभाविक है कि उस लड़की को खुद करमसिह सिर्फ उस दिन देखेगा, जब बारात कन्यापक्ष में पहुंचेगी।

ग्रानंदी को देखना सारे संसार में भर गया है। डेरेवालों की लड़की न होकर, जाति में से होती, तो करमसिह का मन हो रहा था कि वह प्रार्थना करता।

ग्रपनी कल्पना में रात का यह वक्त ग्रानंदी के साथ बिताना कितना रोमांचक लग रहा है।

करवट बदली, तो फिर घर पहुंचने पर उपस्थित होने वाले दृश्यों का पूर्वानुमान लगाने में मन उलझ गया। जुए में हारकर घर लौटा तिरलोकसिह गुफा में वापस पहुंचा हुग्रा घायल शेर होता है। हो सकता है, जब तक मैं वह ग्रपने जीते हुए रुपयों में से हारे हुए बाप को तसल्ली पहुंचाने की कोशिश करे, तिरलोकसिह उसपर झपट्टा मारकर, बिजली की तरह कड़कता ही चला जाए कि, 'क्यों रे स्साले बदजात, बंध चुका तेरे बाप का कपोत ? पड़ चुका तेरे सिर पर सफेद छोपा'[1], जो मेरे जीते-जी ही बिजनिस के कामों में मेरे बाप की तरह में दस्तन्दाजी करने लग गया है।'···

करमसिह को याद ग्रा रहा था, मा की ग्रौर ग्रर्थी-कफन की गालियां देने में तिरलोकसिह ग्रपनी जोट नहीं रखता। पथरीली सड़कों पर नंगे

---

१. सफेद कपड़े को गांठ मारकर, खुली चांद की टोपी के जैसे ग्राकार में, माता व पिता के मरने पर बेटे के सिर में बांधा जाता है, जो ग्रन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न हो जाने पर ही उतरता है। इसी को 'छोपा डालना' कहते हैं।

पांव पैदल चलते-चलते, तिरलोकसिंह के पंजे चौड़े हो चुके हैं। दायें पांव की तली में ठोस सुम भी फूटा है, जो पीठ पर ऐसे चुभता है, जैसे कोई ऐंचे तख्ते पर कील ठोंक रहा हो।

करमसिंह को यह भी याद आ रहा था कि हो सकता है, करमसिंह की करतूत और अपनी हार की सारी खुन्नस तिरलोकसिंह ने मां पर उतारी हो ? उसकी आंखों में कल सुबह का वह दृश्य उभर आया, जब रुपुली अपना वक्ष विदीर्ण करती-सी खड़ी हो गई थी। उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे। बाल उलझे और कुरती के बटन खुले हुए। अपने स्त्री होने के दण्ड भुगतने की गवाही में नितांत कारुणिक ढंग से उघड़े उसके झुर्रियों से भरे स्तन—करमसिंह को लगा कि मां की उस दारुण मूर्ति को वह अब इस वक्त के अंधेरे में ज्यादा साफ देख पा रहा है।

वह लगभग चीखता हुआ पुकार उठा, "मां !"

हालांकि उसने आवाज को काफी दबाया था और पंखी से तुरत सिर ढांप लिया था, लेकिन पानदेव जाग गया।

"क्यों, डियर करम, गायत्री का जाप जैसा क्या कर रहा है ? रात ब्या गई है क्या ?" पानदेव ने पूछा, तो करमसिंह पहले झेंप गया, फिर रुआंसा होकर बोला, "यार, डियर गुरू, रात तो अभी नहीं, मगर मेरे करम ब्या गए हैं और शायद, वही कहावत सामने आ गई है कि 'बांसा सोंहे बांसुरी, मगर बनाया लट्ठ—ऐसा जनमा जनमिया जनमैया चौपट्ट।'...अब तुमसे क्या छिपाना, डियर ! कल मैं बाबू से चोरकर, घर से साग-सब्जी तोड़ लाया था और बाजार में उल्टे-सुल्टे दामों में बेच आया था। खैर, जहां तक सब्जी कुछ सस्ते दामों में बेचने का सवाल है, मैं जहां तक समझता हूं, कम से कम तीन सौ सत्तरी के आसपास तो अभी भी जेब में मौजूद होंगे। जैसे कि तुम तो कह रहे थे कि फिजूलखर्ची हो गई है, लेकिन जमाने को देखते हुए—और खासतौर पर इस बात को देखते हुए कि कोई अपने बाप की कमाई में से तो दिए नहीं—आनंदी के हाथ पर रखे हुए बीस रुपये कोई बहुत बड़ी रकम तो है नहीं। क्यों, गुरू ? हालांकि तुम बनिया आदमी ठहरे...आशिकी क्या चीज होती है, इसे तुम क्या जानो ?"

"तुमने तो, प्यारे, फल्लाथ की जीती हराम की कमाई में से दिए ? मैं खालिस अपने बाप की कमाई में से करीबन अट्ठारह रुपये, छः माने का सौदा गुणवंती को पहले ही उधार दे चुका था। उसका पर्चा भी अलग से बनाया, दुकान के उधारी रजिस्टर में नहीं लिखा।···तुम पानदेव ने क्या बहुत ठकुराई भिडोगे, डियर ? मेरी वजह से ही तुमको मानदी का जिंदा डांस देखने की 'अपरच्युनिटी' मिली, प्यारे !' नहीं तो तुम्हारे जैसे सागवेचुवा खसिया लोग···"

"डेरेवालियों के डांस मैंने खुद बहुत देखे हैं, यार !"

"सड़क छाप देखे होंगे। चीप डासिंग। ऐसे मगसद्दे डांस तो, डियर, हर सड़क चलता देख लेता है। तुम्हारे नसीब में रईसों की बैठक कहां लिखी हुई थी ? तुम्हारे-हमारे जैसों को तो गुणवंती डेरेवाली घाघरे से ढंककर रख देगी।"

"लेकिन एक चीज है, गुरू ! आदमी को—और खास तौर पर, जहां तक मैं समझता हूं, तुम्हारे जैसे नेकनाम बाप के बेटे को अमानत में खयानत नहीं करनी चाहिए।···बैठकबाजी, लोफरी अपनी जगह पर है, लेकिन दुकानदारी अपनी जगह पर है।"

'प्यारे, तुम नहीं बोल रहे हो, जार्ज पंचम बोल रहा है। जार्ज पंचम है तो इंग्लैंड का बादशाह, जैसा कि हिस्ट्री में हम लोग पढ़ते आए हैं—मगर हिन्दुस्तानी के जेब में जार्ज पंचम जरा और ज्यादा गरमी पैदा कर देता है।"

"अब करीबन डेढ़ दिन मुझको अपने साथ फंसाकर यही भाषा बोलोगे, प्यारे ? दोस्ती की ताली दोनों हाथों से बजाई जाती है, डियर ! एक मैं हूं, जो तुम्हारी दोस्ती की खातिर डेरेवालियों की बैठक में फंस बैठा, जबकि हमारे बाप-दादों ने भी कभी···"

"तुम्हारे बाप को खुद मैंने डेरेवालियों की बैठक में हुड़दंग करते देखा है, डियर !"

"बाप तक जाना ठीक नहीं, गुरू ! जैसा तुम्हारा, वैसा मेरा बाप ! कुशलदेव और तुम ब्राह्मणवंशज होकर डेरेवालियों की संगत कर सकते हो, जिनका कि पवित्र पेशा पूजा-पाठ बताया गया है, तो हम ठाकुर लोगों

को क्या नाम रखते हो, गुरू ! फिर भी, जहां तक मेरा खुद का सवाल है, मैं तो, डियर, उसी दिन 'थुरू' घर को रवाना होने वाला था। मैं तो कैसी-कैसी वियावान और खतरनाक जगहों से आधी-आधी रात को तक घर रवाना हो जाया करता हूं।…मगर मैं यही सोचकर रुक गया, गुरू अपने स्कूल के बहुत पुराने डियर हैं। उन्होंने जब 'करमसिंह, जरा यहां रुक जा, डियर !' कह दिया है, तो एक रात दास्तीखाते में ही सही।… मैं क्या जानता था, यहां डेरेबाजी में फंसा जाएगा ? अब आज तो मेरे बाबू मुझको जरा-सा भी जिन्दा तो हरगिज-हरगिज नहीं छोड़ने वाले हैं, डियर !…"

"मगर, डियर, बाई गॉड कहो—मुझसे रात को यह कहां कहा था, तुम घर से साग-सब्जी चोरकर, वेच आए हो ? चोरी करना तो वैसे भी 'डिफोल्टर' है, यार ! अगर तेरे बाबू ने कहीं पुलिस में रिपोर्ट लिखा दी होगी, कि मेरा बेटा मय साग-सब्जी के कल से गुमशुदा हो गया है, तो जाब्ता कार्रवाई दीवानी हुलिया कटाने की भी हो सकती है। फिर तू तो, शायद, अपनी मां का भी कोई जेवर-बुंदा भी चुरा लाया, शायद ? नहीं तो, मां से माफी क्यों मांग रहा था ?"

"पानदेव गुरू, यार डियर, तुम भी बहुत घिसी हुई रकम हो। बात तो तुम एकदम 'ऑलराइट' किस्म की कह रहे हो कि चोरी का कुकर्म साला कोई अच्छा काम नहीं है। मगर, डियर, कभी-कभी कोई पोजीशन ऐसी भी आ जाती है, आदमी कई तरह के गुनाह कर बैठता है।"

"बाई गॉड, डियर, तेरा माइंड भी बहुत तेज है। तूने आखिर पकड़ लिया कि सुबह होने के वक्त में हम दोनों मेढ़ों की तरह आपस में क्यों टकरा रहे थे। तू अगर उस गांव के खड्डे से निकलकर, कहीं बाजार-शहर में बिजनिस करने बैठता, तो गजब कर देता, डियर !…मुझको भी एक तुझ जैसे फ्री-इस्टाइल दोस्त की बहुत सख्त जरूरत है। तू यहां होता, तो ऐसी मजेदार जिंदगानी गुजरे, डियर, कि बाई गाड—मजा आ जाएगा। और, तू अपने यहीं देवाल की बाजार में साग-सब्जी की दुकान खोलने की क्यों नहीं सोचता है ? जितने रुपयों में डोटियालों की तरह कुलीगीरी करते हुए, अपने सिर पर डलिया लिए-लिए 'कोई सब्जी लेते हो,

कोई सब्जी लेते हों चिल्लाते हुए, तेरे बाबूजी तल्ली-मल्ली बाजार के चक्कर काटते हैं, उससे ड्योढ़े-दूने तुम आराम से दुकान में बैठे-बैठे ही वसूल कर सकते हो। जहां तक गुणवंती का सवाल है, प्यारे, वह बहुत ऊंची चीज है। अकेले उसके डेरे में पहुंचना न तुम्हारे लिए ठीक रहेगा—न मेरे लिए।"

"लेकिन दुकान की बात तो बहुत दूर का ख्वाब है, डियर गुरू! अभी तो पहले अपनी जान फांसी पर झूल रही है। मेरे बाबू तो बहुत ही विकट स्वभाव के आदमी हैं। बाई फादर, आज मेरी पूरी हजामत होने वाली है। घर वापस जाने की हिम्मत नहीं पड रही है। सोचता हू, यहीं से पलटन बाजार जाकर, फौज में भर्ती हो जाऊं क्या ?"

"प्यारे, तुम्हारे फौज में भर्ती होने और छुट्टी पर लौटने तक में आनंदी दो बच्चों की मा बन चुकी होगी। मुझको तो, डियर, कल रात गहरी नींद तब लगी है, जब संकल्प कर लिया है कि इस चीज को हासिल करना है। डियर, तुम तो ठाकुर हो, मुझे बामन कहते हो।···लेकिन, बाई फादर, इस बात को मैं जोर देकर कहना चाहता हू कि मर्द के बच्चे को अपनी नाक कभी नहीं कटानी चाहिए। कल रात गुणवंती ने जिस तरह से बिशन लम्बू की आव-भगत करते और हम लोगों को दूधपीते बच्चों की तरह बहला-फुसला के वापस कर दिया—मैं भी डियर गुणवंती को दिखाना चाहता हूं कि अट्ठारह रुपये का उधार सौदा देने का जोखिम कलेजा से ही उठाया गया था!"

"इस आनंदी को तो हासिल करना है। जहां तक मैं समझ रहा हू, इस बात ने मेरी जिंदगी का ख्वाब हो जाना है।" कहते हुए करमसिंह को लगा कि कल रात भर जितनी तरह से, और जितने रूपों में, वह आनंदी को स्मरण करता रहा—भीतर की वह सारी व्याकुलता इस वक्त एकसाथ चेहरे पर इकट्ठा हो आई होगी।

"अच्छा, गुरू, इस वक्त इजाजत हो, फिर जल्दी ही मुलाकात होगी।" कहते हुए, उसने जूते पहने और बाहर निकल आया। नीचे गली में पहुंचते ही उसने अपनी जेब को टोहा कि रुपये यथावत हैं, या नहीं। अपने इस इरादे को फिर से स्मरण किया कि जितना भी सम्भव हो सके, घर के

लिए चीजों की खरीदारी कर लेनी है।

कब्रिस्तान की दीवार शुरू हुई, तो उसे लगा कि रुपयों के होने का अहसास ही है, जो उसे सुरक्षा देता चल रहा है। कब्रिस्तान में देवदारु के वृक्षों का हवा की लहर में होना उसे प्रकृति की कृपा की तरह महसूस हुआ। और वह एकाएक ही गाना गुनगुनाने लगा—'हां-आं···गजब किया···गजब किया···'

बाजार शुरू होते ही, उसने चुप लगा ली और गांव वापस पहुंचने की तैयारी में व्यस्त हो गया।

१२

श्यामा दूर से ही आती दिखाई दे गई। रेवाचरन का मन, बीजक पर से उचटकर बजरिया सड़क के चौकोर पथरौटों पर राधारानी की मूरत जैसी भटकती चलती श्यामा (मिरासिन) की लम्बी-लम्बी बाहों तक पहुंच गया।

दोपहर के वक्त का सन्नाटा लगभग पूरे शहर पर पसरा लगता है। लकड़ियां, साग-सब्जी और पहाड़ी घी वगैरह बेचने वाले भी इस वक्त इक्का-दुक्का ही गुजर रहे हैं, सुबह की सी आवाजाही नहीं।

श्यामा का एकाएक का दिखाई पड़ना कुछ ऐसा लगा, जैसे सोचने का भी एक रिश्ता होता है। लम्बे अरसे से जिस उदासीनता और विक्षुब्धता में रहने का अभ्यास हो गया था, श्यामा के संसर्ग में आने के बाद से उसमें काफी बदलाव आ गया है। घर के खीझ, असंतोष और तनाव-भरे वातावरण से दूर-दूर रहने की कोशिशों में कब धीरे-धीरे श्यामा के इतने निकट जा पहुंचे, इस बात का जैसे कोई होश रहा ही नहीं है।

रेवाचरन ने सरसरी तौर पर बाहर, चारों ओर देखा। सत्तार मियां का लड़का रशीद दुकान पर बैठा था, जिसका मतलब था कि सत्तार मियां दोपहर का खाना खाने गए और अब शाम के वक्त ही आएंगे।

जब तक मैं श्यामा उनके करीब आती, उन्होंने तय कर लिया और संकेत से बता दिया कि इस ओर से न आए। बाहर के 'शो रूम' के पीछे गोदाम का कमरा है और ऊपर आफिसनुमा कमरा, जिसका रास्ता गोदाम वाले कमरे से भी जाता है—पीछे की गली से भी। ज्योंही श्यामा गली की ओर को मुड़ी, याद आया कि उस तरफ का दरवाजा खुला न होगा। तेज कदमों से गोदाम वाले कमरे के भीतर खाली लकड़ी की सीढ़ी पर होते हुए, ऊपर पहुंचे। दरवाजे की चिटखनी खोली। देखा, श्यामा गली

के ऊपर पड़े चौड़े पत्थर पर खड़ी है।

"सेवा मानें, गुसांई!" कहते हुए वह हाथ को कपाल की ओर उठा ही रही थी कि रेवाचरन धीमे से फुसफुसाए, "पहले कमरे में आ जाओ।"

बाजार की ओर वाली खिड़कियां बंद पड़ी थीं। घर से आने के बाद से नीचे 'शो रूम' में ही बैठे रहे थे। अंदेशा सिर्फ गली की तरफ से देखे जाने का ही हो सकता था। दरवाजे की चिटखनी चढ़ाने के साथ ही उन्होंने अपने सारे डर को समेट लिया—देखा जाएगा।

श्यामा को चारपाई पर बैठने का इशारा करके, रेवाचरन फिर नीचे उतर आए और रशीद को आवाज देते हुए बोले, "बेटे, जरा इधर भी नजर रखना। खीमसिंह खाकर लौट आए, तो बता देना, मैं जरा सो रहा हूं—जगाए नहीं।"

रशीद ने 'जी, चचाजी' कहकर गर्दन हिलाई और रेवाचरन 'शो रूम' के सिर्फ एक पल्ले को खिला छोड़कर, श्यामा के पास पहुंच गए। लकड़ी की सीढ़ी के मुहाने पर का पल्ला उन्होंने एहतियातन नीचे गिरा दिया और ऊपर से उसके ऊपर एक खाली ड्रम खिसका दिया, ताकि खीम-सिंह एकाएक ऊपर न आने पाए।

श्यामा ने अत्यन्त मीठे कटाक्ष के साथ 'आप तो बिल्कुल भूखे बाघ की सी उतावली में हैं, गुसांई!' कहते हुए उन्हें धीमे से संतुलित किया और जूते-मोजे उतारने लगी।

रेवाचरन को अपनी उतावली का ही नहीं, परिवर्तित मानसिकता का भी अहसास हुआ कि क्या इस हद तक अपने-आपको बदल डालने का साहस वह पहले कभी कर पाते? श्यामा को उन्होंने एक बार अपने ठिकाने का भूगोल जरूर समझाया था कि 'ऊपर के कमरे में गुसलखाना भी है और एक चारपाई भी डाले रहता हूं। कभी कोई मेहमान टिक जाता है। कभी मैं ही रह जाता हूं। दोपहर को सोने की आदत भी है।'...लेकिन यह क्या खुद उन्होंने कभी सोचा भी था कि श्यामा को अपने एकांत कमरे में यों बुला डालने का साहस वह बरतेंगे—वह भी भर दुपहरी में?

स्मृति पर जोर देने पर लगा कि ऐसा तो अभी कल रात भी सोचा था, जब लीला बहू भिनभिनाती से 'तो मैं मांजी के पास ही सो जाती हूं'

कहती हुई कमरे से बाहर निकल गई थी। श्यामा के यहां का पहुंचना भी उन्हें याद आया था कि कैसे रात के एकांत में देखते ही श्यामा जैसे हजार आंखों वाली हो आई थी और तय है कि वैसे स्त्री-पुरुष की कल्पना तो लीलावती के ठण्डेपन में मैं की ही नहीं जा सकती, जो हमेशा धूप की पहुंच से बाहर रहने वाले एकांत की भी प्रतीति से भरा रहता है।

लौट जाने की पहल श्यामा ने ही की और 'गुसाईं, मेरा यहां रहना आपके लिए ठीक नहीं होगा। मेरी तो क्या बदी और क्या नेकी। आइंदा ऐसी गलती नहीं करूंगी। आप तो मर्द की जात हैं, मुझे सब्र रखना चाहिए था। अब कभी उस तरफ घूमने निकलिएगा, तो दर्शन दीजिएगा। डेरा अब पहले से काफी ठीक हो गया है। ध्यानी मास्टर इन दिनों भाबर चले गए हैं। अच्छा, चलूंगी, सेवा मानिए।' कहते हुए उनके पांवों को छूकर, हाथ माथे पर लगाते हुए, अत्यन्त सावधानी से चिटखनी उतार, तुरत बाहर निकल गई।

कुछ क्षण तो सिर्फ बदहवासी रही, लेकिन श्यामा के काफी दूर निकल चुके होने के इतमीनान में आते ही रेवाचरन को कुछ ऐसी राहत अनुभव हुई, जैसे खदेड़े जा रहे चोर,के पीछे मुड़कर देखने पर, दूर-दूर तक कोई न दिखाई पड़े। उन्हें लगा कि श्यामा के दिखाई दे जाने से लेकर, अब तक का सारा वक्त बदहवासी में ही गुजर गया। श्यामा जैसे बादल की तरह घेरे थी, उसके हटते ही सब कुछ उजागर हो आया है। सारे जिस्म पर ग्लानि और दुश्चिंता पसीने की तरह उमस आई है। कहीं अतल अंधेरे में छिपी हुई सी यह तैयारी कि ठीक है, एक बार को बदनामी और बिरादरी—बाहर हो जाने के जोखिम से टकराना पड़ेगा और तय है कि जख्मी होना पड़ेगा, लेकिन सिर्फ एक बार।

जैसे अपने आवेग को संभाल न पा रहे हों, रेवाचरन तेजी से उठे। गुसलखाने में जाकर नहाया और कपड़े बदले, तो याद आया कि सुबह से नाश्ता तक नहीं किया है।

खीमसिंह के आ चुकने का आभास होते ही, आवाज देकर, ऊपर बुलाया। खीमसिंह ने नीचे की ओर से खटखटाया, तो याद आया कि सीढ़ी के मुहाने पर ड्रम हटाना तो भूल ही गए।

चाय-टोस्ट ले आने को कहकर, रेवाचरन फिर ऊपर लौट आए। खिड़कियों को उन्होंने अभी तक नहीं खोला था। खोलना शुरू किया, तो लगा, चारों तरफ से एक वेग के साथ कमरे में आती हुई हवा के सामने बिल्कुल नंगे पड़ गए हैं।

समय भी कभी-कभी किस तरह आता है। फर्क करना कठिन हो जाता है कि यह सिर्फ वक्त का दबाव है, जिसमें चीजें तेज आंधी में ऊपर उठी धूल की तरह माथे पर आ गई हैं—या कि इनकी जड़ें अपने ही भीतर कहीं हैं।

लीला बहू के साथ दाम्पत्य जीवन की शुरुआत के दिन अब ज्यादा याद आते हैं। ठीक है कि अपने कालेज जीवन के संगी-साथियों के साथ का घूमना-फिरना, ताश खेलना, सिनेमा देखना—बहुत-सी आदतें ऐसी थीं, जिन्हें बत्तीस साल की उम्र तक तलछट की तरह नीचे बैठ चुका होना चाहिए। खास तौर से एक कुलीन परिवार में।…लेकिन, जितने और जिस तरह के अपवाद रेवाचरन के विरुद्ध फैला दिए गए, उस सबके बीच लीला बहू से उनके दाम्पत्य जीवन की शुरुआत अच्छी हो नहीं पाई।

रेवाचरन भावुक और कल्पनाजीवी जरूर रहे हैं, लेकिन सहिष्णुता का अभाव तो उनमें कभी नहीं रहा और काफी मुखर रूप में सौतेली मां और भाइयों के अवमानना-भरे व्यवहार का भी खुद अपनी ओर से ठीक उसी अप्रियता के साथ जवाब कभी नहीं दिया।

सोचते हैं, तो यह जरूर लगता है कि लीला बहू ऐसे आई थी, दूर-दूर तक प्रेम या भावनाओं के ज्वार का उसमें कहीं कोई चिह्न दिखता नहीं था। लगता था, तुलसी के पौधे की तरह सिर्फ भांवरें फिरने और मंगलसूत्र धारण करने भर की मानसिक तैयारी साथ लेकर आई है। खुद रेवाचरन कुछ संग-साथ, कुछ कविता-उपन्यास-नाटक पढ़ने के शौकीन होने और कुछ अपनी कल्पनाजीवी मनोवृत्ति ही नहीं, बल्कि थोड़ा-बहुत निष्णात किस्म की स्त्री-संसर्गों में भी रह चुकने के कारण जैसे कुछ इस तरह की पत्नी की प्रतीक्षा में बैठे थे, जो आते ही अपने सम्पूर्ण आवेग, राग और स्त्रीत्व के साथ उन्हें छा लेगी।

यह सब हुआ नहीं। जहां तक पिता शारदाचरणजी का सवाल है,

अपनी ओर से कोई कोर-कसर रखी नहीं थी उन्होंने, बल्कि सारी जात-बिरादरी में एक अरसे तक यह बात चर्चा का विषय रही थी कि जाति-पाति के मामले में लगभग अभेद्य किस्म के दिवान परिवार में रिश्ता करने में वह सफल हुए थे।

'अनजान धरती की यात्रा करते में, पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण इन चार दिशाओं का ध्यान रखना जरूरी है, गृहस्थ-पंथ धारण करते समय कन्या-पक्ष की चार स्थितियों को देखना आवश्यक है—जात, औकात, बिसात और कुल।' पंडित शारदाचरण पांडेजी की यही मान्यता थी।

रेवा उनकी पहली घरवाली से थे। दूसरी घरवाली से दो लड़के थे, एक लड़की। मगर पहली बरखा और पहला पूत प्यारा। "जब से सिद्धि देवी नहीं रह गई, तब से तो रेवा पर उनकी ममता और गहरी हो गई। कामना थी कि रेवाचरन के पावों में नंगोले की रस्सी नहीं, सोने की जंजीर पड़नी चाहिए।···सो जब गल्ली के लमधोतिया (लम्बी धोती पहनने वाले ब्राह्मण) और ठुलघरिया, (हवेलीवाले) दिवान-खानदान के उमावल्लभ जोशीजी ने अपनी सुकन्या लीलावती उनके घराने में देने का पंचांगुल आश्वासन दिया, तो लगा कि कृतार्थ हैं।

लीलावती बहू का आना तो अभी भी याद है। चौबीस वर्षों की सयानी-सयानी आई थी, हालांकि जिस्म में उतना भराव नहीं था। लेकिन रंग कैसा, जैसे कोई राजकन्या हो। नये-नये स्वर्णाभूषणों की सी कौंध पूरे चेहरे में भरी हुई आंखों में एक तरह की शीतलता और पतले होंठों के कारण गायत्रीमंत्र जैसी पवित्र लगती हुई लीला बहू—देवी-प्रतिमा का सा रूप था वह!

आज विग्रह की मनःस्थितियों में वह सब स्वप्नवत् लगता है। कौन जानता था कि यह सारा साक्षात्कार दिवास्वप्न की तरह टूटेगा और लीला बहू की अवमानना उनके भीतर के पुरुष को घुन की तरह खाती ही जाएगी।

शायद चौथे या पांचवें दिन वह एकान्त उपलब्ध हुआ था, तब तक लोकरीतियों और कुलदेवताओं के पूजन में ही लीला बहू व्यस्त रही थी। न जाने कब से पलंग पर यों ही बैठी थी उनके कमरे में। रेवा तो ताश खेलने

चाय-टोस्ट ले आने को कहकर, रेवाचरन फिर ऊपर लौट आए। खिड़कियों को उन्होंने अभी तक नहीं खोला था। खोलना शुरू किया, तो लगा, चारों तरफ से एक वेग के साथ कमरे में आती हुई हवा के सामने बिल्कुल नंगे पड़ गए हैं।

समय भी कभी-कभी किस तरह आता है। फर्क करना कठिन हो जाता है कि यह सिर्फ वक्त का दबाव है, जिसमें चीजें तेज आंधी में ऊपर उठी धूल की तरह माथे पर आ गई हैं—या कि इनकी जड़ें अपने ही भीतर कहीं हैं।

लीला वहू के साथ दाम्पत्य जीवन की शुरुआत के दिन अब ज्यादा याद आते हैं। ठीक है कि अपने कालेज जीवन के संगी-साथियों के साथ का घूमना-फिरना, ताश खेलना, सिनेमा देखना—बहुत-सी आदतें ऐसी थीं, जिन्हें बत्तीस साल की उम्र तक तलछट की तरह नीचे बैठ चुका होना चाहिए। खास तौर से एक कुलीन परिवार में।···लेकिन, जितने और जिस तरह के अपवाद रेवाचरन के विरुद्ध फैला दिए गए, उस सबके बीच लीला बहू से उनके दाम्पत्य जीवन की शुरुआत अच्छी हो नहीं पाई।

रेवाचरन भावुक और कल्पनाजीवी जरूर रहे हैं, लेकिन सहिष्णुता का अभाव तो उनमें कभी नहीं रहा और काफी मुखर रूप में सौतेली मां और भाइयों के अवमानना-भरे व्यवहार का भी खुद अपनी ओर से ठीक उसी अप्रियता के साथ जवाब कभी नहीं दिया।

सोचते हैं, तो यह जरूर लगता है कि लीला वहू ऐसे आई थी, दूर-दूर तक प्रेम या भावनाओं के ज्वार का उसमें कहीं कोई चिह्न दिखता नहीं था। लगता था, तुलसी के पौधे की तरह सिर्फ भांवरें फिरने और मंगलसूत्र धारण करने भर की मानसिक तैयारी साथ लेकर आई है। खुद रेवाचरन कुछ संग-साथ, कुछ कविता-उपन्यास-नाटक पढ़ने के शौकीन होने और कुछ अपनी कल्पनाजीवी मनोवृत्ति ही नहीं, बल्कि थोड़ा-बहुत निष्णात किस्म की स्त्री-संसर्गों में भी रह चुकने के कारण जैसे कुछ इस तरह की पत्नी की प्रतीक्षा में बैठे थे, जो आते ही अपने सम्पूर्ण आवेग, राग और स्त्रीत्व के साथ उन्हें छा लेगी।

यह सब हुआ नहीं। जहां तक पिता शारदाचरणजी का सवाल है,

-हरिशयनी एकादशी तक अनछुली ही रह गई। न कभी लीलावती बौराणी ने मनुहार की और न रेवाचरन के मन में लीलावती बौराणी को स्पर्श करने की ललक जागी।

समय को तो बीतना था। बीतता ही जाता था। सास-बहू में अपनापा हो गया था। संयोग से लीलावती की सौतेली सासू इलावती भी दिवान-खानदान के विशाल वट-वृक्ष से एक उपजड़ी जैसी फूटी हुई थी, सो धरम-पुण्य के कामों में दोनों का चित्त अच्छा रमता था। सोमवार के सन्तति-सम्पत्ति और सौभाग्य देने वाले व्रत से लेकर, पुत्रदा-कामदा-पापांकुशा-हरिशयनी एकादशियों के उपवास और धन त्रयोदशी, गणेश चतुर्थी, संकष्टा चतुर्थी, अनन्त चतुर्थी, जया पंचमी, विष्णु सप्तमी तथा रोहिणी-नन्दिनी आदि इतने पर्व पड़ते थे कि व्रत-नेम निभाने में ही अधिकांश समय बीत जाता। बाकी बचा समय घर-गृहस्थी के छोटे-मोटे कामों में हाथ लगाते-लगाते कट जाता। लीलावती कोशिश करके तो सामने आती ही नहीं थी। इतना वह जरूर मानती थी कि जहां गृहस्थ-पथ में पांव पड़ गए हैं तो एक सेज की नींद भी झेलनी ही पड़ती है, मगर ऐसी बेहया, बेशरम औरत का तो मुंह नहीं देखना चाहिए, जो मिरासिनी की तरह निर्लज्ज होकर 'आ सैंया, मेरी सेज सो' कहे।···हिन्दू नारी का असली पातिव्रत तो धरम-नेम निभाने में है। व्रत-उपवास-पूजन-कीर्तन से इहलोक-परलोक दोनों सुधरते हैं। ईश्वर-भक्ति भी हो जाती है। पुरुष-स्त्री सम्बन्ध तो संतानोत्पत्ति का निमित्त बनाया है उन्होंने। पति और सन्तति के लिए लम्बी आयु और सुख-सम्पत्ति के लिए व्रत-नियम-उपवास की शास्त्रविहित परम्परा में ही स्त्री की मुक्ति है—यही मायके में सीखा था, यही इलावती सासूजी सिखाती थी। हिन्दू नारी का जीवन तो तप-स्विनी का जीवन है। उसे तो अपनी कुल-परम्परा की लाज रखनी पड़ती है। पति को सुखी बनाने के लिए भरी पूरी गृहस्थी में संन्यासिनी के जैसा तापसी जीवन बिताना पड़ता है। पति के साथ छिनालों की तरह मस्ती अठखेली करने और गोपियों की जैसी रासलीला रचाने का बेहयापन उसमें नहीं होना चाहिए।

में ही खोए रहे थे क्योंकि लीला बहू कहां है—यहां, या मायके में, उन्हें कुछ जानकारी नहीं थी। सिद्धि देवी थीं नहीं। शारदा पंडित एक पुण्य कर्म हाथों आ चुकने की सी आत्मतृप्ति में प्रयाग चले गए थे—अपने दामाद धरतीधरन तो शादी वाले दिन ही लौट गए थे—दूसरे, गंगा स्नान कर लेने की कामना।

जाते समय रेवाचरन के सिर पर हाथ फेरते हुए आशीष दे गए थे और यह कहते हुए रो भी पड़े थे कि, 'आज, बेटे, सातवां दिन है। तेरी मां सिद्धि लगातार सपने में आ रही हैं। शादी की रातों के वक्त भी लगता रहा, जानकी माता की प्रतिमा की तरह वही मेरे वायें पार्श्व में उपस्थित हैं। वत्ती स्त्री पाना बहुत पुण्यों से ही होता है। मेरा साथ तो उन्होंने उम्रभर ऐसे दिया, जैसे मां छोटे बच्चों का देती हैं।'···

आसपास से गुजरती इलावती बहूजी के कानों में उनका आर्द्रस्वर पड़ गया था, और किंचित् व्यंग्य में बोली थीं, 'ऐसे तो लीला के बाबू, जैसे तुम लड़के से विदा हो रहे हो।'

हो सकता है, मां और पिता के रक्त का ही प्रभाव हो। स्मृति में सब कुछ वर्षा के जल की तरह बीता हुआ इकट्ठा होने लगता है।

लीला बहू, उस वक्त, जैसे उनके आने की प्रतीक्षा में नहीं, बल्कि सिर्फ अपने कुलवधू होने की सी प्रतीति में बैठी थी। किसी लम्बे स्वप्न-दृश्य में खोई-सी, पलंग की पाटी पर पिंडलियां उघारे, पांव झुलाए बैठी थी। रेवाचरन को लगा था, जैसे किसी मायालोक में पहुंच गए हैं और भावुकता-वश अनुराग के साथ लीला बहू की एड़ी-पिंडलियों को ही सुर-सुराना शुरू कर दिया। मगर परपुरुष के स्पर्श से चौंकती-सी लीलावती बहू ने अपने पांव ऐसे समेट लिए, जैसे सिसून (बिच्छू घास) लग गई हो। जमीन पर उतरकर, फर्श पर बेर-बेर माथा टेककर, एक अजीब विरक्ति और सूखी आवाज़ में कुनमुनाई थी, 'पाप छिमा, पाप छिमा!'

और रेवा को लगा कि उनकी प्रणयाकुल लाजवन्ती जैसी भावुकता को किसीने सख्त पत्थर के नीचे दबा दिया है। उस एक क्षण की विरक्ति, एक क्षण की कटु अनुभूति लौकी लता जैसी बढ़ती, धीरे-धीरे कहां पहुंच गई। फागुन की पिंगली लगन-चन्द्रिका में पड़ी भांवर-ग्रन्थि आषाढ़ की

हरिशयनी एकादशी तक अनखुली ही रह गई। न कभी लीलावती बौरानी ने मनुहार की और न रेवाचरन के मन में लीलावती बौरानी को स्पर्श करने की ललक जागी।

समय को तो बीतना था। बीतता ही जाता था। सास-बहू में अपनापा हो गया था। सयोग से लीलावती की सौतेली सास इलावती भी दिवान-खानदान के विशाल वट-वृक्ष से एक उपजडी जैसी फूटी हुई थी, सो धरम-पुण्य के कामो मे दोनो का चित्त अच्छा रमता था। सोमवार के सन्तति-सम्पत्ति और सौभाग्य देने वाले व्रत से लेकर, पुत्रदा-कामदा-पापाङ्कुशा-हरिशयनी एकादशियो के उपवास और धन त्रयोदशी, गणेश चतुर्थी, संकष्टा चतुर्थी, अनन्त चतुर्थी, जया पचमी, विष्णु सप्तमी तथा रोहिणी-नन्दिनी आदि इतने पर्व पडते थे कि व्रत-नेम निभाने में ही अधिकाश समय बीत जाता। बाकी बचा समय घर-गृहस्थी के छोटे-मोटे कामो मे हाथ लगाते-लगाते कट जाता। लीलावती कोशिश करके तो सामने आनी ही नही थी। इतना वह जरूर मानती थी कि जहा गृहस्थ-पथ में पाव पड गए हैं तो एक सेज की नीद भी झेलनी ही पडती है, मगर ऐसी बेहया, बेशरम औरत का तो मुंह नही देखना चाहिए, जो मिरासिनी की तरह निर्लज्ज होकर 'आ सैंया, मेरी सेज सो' कहे।···हिन्दू नारी का असली पातिव्रत तो धरम-नेम निभाने मे है। व्रत-उपवास-पूजन-कीर्तन से इहलोक-परलोक दोनों सुधरते हैं। ईश्वर-भक्ति भी हो जाती है। पुरुष-स्त्री सम्बन्ध तो संतानोत्पत्ति का निमित्त बनाया है उन्होने। पति और सन्तति के लिए लम्बी आयु और सुख-सम्पत्ति के लिए व्रत-नियम-उपवास की शाश्वतिक परम्परा में ही स्त्री की मुक्ति है—यही मायके मे सीखा था, यही इलावती सासूजी सिखाती थी। हिन्दू नारी का जीवन तो तप-स्विनी का जीवन है। उसे तो अपनी कुल-परम्परा की लाज रखनी पडती है। पति को सुखी बनाने के लिए भरी पूरी गृहस्थी में संन्यासिनी के जैसा तापसी जीवन बिताना पड़ता है। पति के साथ छिनालों की तरह मस्ती अठखेली करने और गोपियों की जैसी रासलीला रचाने का बेहयापन उसमें नही होना चाहिए।

में ही खोए रहे थे क्योंकि लीला वहू कहां है—यहां, या मायके में, उन्हें कुछ जानकारी नहीं थी। सिद्धि देवी थीं नहीं। शारदा पंडित एक पुण्य कर्म हाथों आ चुकने की सी आत्मतृप्ति में प्रयाग चले गए थे—अपने दामाद वरतीवरन तो शादी वाले दिन ही लौट गए थे—दूसरे, गंगा स्नान कर लेने की कामना।

जाते समय रेवाचरन के सिर पर हाथ फेरते हुए आशीष दे गए थे और यह कहते हुए रो भी पड़े थे कि, 'आज, वेटे, सातवां दिन है। तेरी मां सिद्धि लगातार सपने में आ रही हैं। शादी की रातों के वक्त भी लगता रहा, जानकी माता की प्रतिमा की तरह वही मेरे वायें पार्श्व में उपस्थित हैं। वसी स्त्री पाना वहुत पुण्यों से ही होता है। मेरा साथ तो उन्होंने उम्रभर ऐसे दिया, जैसे मां छोटे वच्चों का देती हैं।'···

आसपास से गुजरती इलावती वहूजी के कानों में उनका आर्द्रस्वर पड़ गया था, और किंचित् व्यंग्य में वोली थीं, 'ऐसे तो लीला के वावू, जैसे तुम लड़के से विदा हो रहे हो।'

हो सकता है, मां और पिता के रक्त का ही प्रभाव हो। स्मृति में सव कुछ वर्षा के जल की तरह वीता हुआ इकट्ठा होने लगता है।

लीला वहू, उस वक्त, जैसे उनके आने की प्रतीक्षा में नहीं, वल्कि सिर्फ अपने कुलवधू होने की सी प्रतीति में वैठी थी। किसी लम्वे स्वप्न-दृश्य में खोई-सी, पलंग की पाटी पर पिंडलियां उघारे, पांव झुलाए वैठी थी। रेवाचरन को लगा था, जैसे किसी मायालोक में पहुंच गए हैं और भावुकता-वश अनुराग के साथ लीला वहू की एड़ी-पिंडलियों को ही सुर-सुराना शुरू कर दिया। मगर परपुरुष के स्पर्श से चौंकती-सी लीलावती वहू ने अपने पांव ऐसे समेट लिए, जैसे सिसून (विच्छू घास) लग गई हो। जमीन पर उतरकर, फर्श पर वेर-वेर माथा टेककर, एक अजीव विरक्ति और सूखी आवाज में कुनमुनाई थी, 'पाप छिमा, पाप छिमा!'

और रेवा को लगा कि उनकी प्रणयाकुल लाजवन्ती जैसी भावुकता को किसीने सख्त पत्थर के नीचे दवा दिया है। उस एक क्षण की विरक्ति, एक क्षण की कटु अनुभूति लौकी लता जैसी वढ़ती, धीरे-धीरे कहां पहुंच गई। फागुन की पिंगली लगन-चन्द्रिका में पड़ी भांवर-ग्रन्थि आषाढ़ की

हरिशयनी एकादशी तक अनखुली ही रह गई। न कभी लीलावती बीरानी ने मनुहार की और न रेवाचरन के मन में लीलावती बीरानी को स्पर्श करने की ललक जागी।

समय को तो बीतना था। बीतता ही जाता था। सास-बहू में अपनापा हो गया था। संयोग से लीलावती की सौतेली सासू इलावती भी दिवान-खानदान के विशाल वट-वृक्ष से एक उपजड़ी जैसी फूटी हुई थी, तो धरम-पुण्य के कामों में दोनों का चित्त अच्छा रमता था। सोमवार के सन्तति-सम्पत्ति और सौभाग्य देने वाले व्रत से लेकर, पुत्रदा-कामदा-पापांकुशा-हरिशयनी एकादशियों के उपवास और धन त्रयोदशी, गणेश चतुर्थी, सकष्ठा चतुर्थी, अनन्त चतुर्थी, जया पंचमी, विष्णु सप्तमी तथा रोहिणी-नन्दिनी आदि इतने पर्व पड़ते थे कि व्रत-नेम निभाने में ही अधिकांश समय बीत जाता। बाकी बचा समय घर-गृहस्थी के छोटे-मोटे कामों में हाथ लगाते-लगाते कट जाता। लीलावती कोशिश करके तो सामने आती ही नहीं थी। इतना वह जरूर मानती थी कि जहां गृहस्थ-पथ में पांव पड़ गए हैं तो एक सेज की नींद भी झेलनी ही पड़ती है, मगर ऐसी बेहया, बेधरम औरत का तो मुंह नहीं देखना चाहिए, जो मिरासिनी की तरह निर्लज्ज होकर 'आ सैयां, मेरी सेज सो' कहे।'''हिन्दू नारी का असली पातिव्रत तो धरम-नेम निभाने में है। व्रत-उपवास-पूजन-कीर्तन से इहलोक-परलोक दोनों सुधरते हैं। ईश्वर-भक्ति भी हो जाती है। पुरुष-स्त्री सम्बन्ध तो संतानोत्पत्ति का निमित्त बनाया है उन्होंने। पति और सन्तति के लिए लम्बी आयु और सुख-सम्पत्ति के लिए व्रत-नियम-उपवास की शास्त्रविहित परम्परा में ही स्त्री की मुक्ति है—यही मायके में सीखा था, यही इलावती सासूजी सिखाती थीं। हिन्दू नारी का जीवन तो तप-स्विनी का जीवन है। उसे तो अपनी कुल-परम्परा की लाज रखनी पड़ती है। पति को सुखी बनाने के लिए भरी पूरी गृहस्थी में संन्यासिनी के जैसा तापसी जीवन बिताना पड़ता है। पति के साथ छिनालों की तरह मस्ती अठखेली करने और गोपियों की जैसी रासलीला रचाने का बेहयापन उसमें नहीं होना चाहिए।

में ही खोए रहे थे क्योंकि लीला बहू कहां है—यहां, या मायके में, उन्हें कुछ जानकारी नहीं थी। सिद्धि देवी थीं नहीं। शारदा पंडित एक पुण्य कर्म हाथों आ चुकने की सी आत्मतृप्ति में प्रयाग चले गए थे—अपने दामाद वरतीधरन तो शादी वाले दिन ही लौट गए थे—दूसरे, गंगा स्नान कर लेने की कामना।

जाते समय रेवाचरन के सिर पर हाथ फेरते हुए आशीष दे गए थे और यह कहते हुए रो भी पड़े थे कि, 'आज, बेटे, सातवां दिन है। तेरी मां सिद्धि लगातार सपने में आ रही हैं। शादी की रातों के वक्त भी लगता रहा, जानकी माता की प्रतिमा की तरह वही मेरे बायें पार्श्व में उपस्थित हैं। बत्ती स्त्री पाना बहुत पुण्यों से ही होता है। मेरा साथ तो उन्होंने उम्रभर ऐसे दिया, जैसे मां छोटे बच्चों का देती हैं।'...

आसपास से गुजरती इलावती बहूजी के कानों में उनका आर्द्रस्वर पड़ गया था, और किंचित् व्यंग्य में बोली थीं, 'ऐसे तो लीला के बाबू, जैसे तुम लड़के से विदा हो रहे हो।'

हो सकता है, मां और पिता के रक्त का ही प्रभाव हो। स्मृति में सब कुछ वर्षा के जल की तरह बीता हुआ इकट्ठा होने लगता है।

लीला बहू, उस वक्त, जैसे उनके आने की प्रतीक्षा में नहीं, बल्कि सिर्फ अपने कुलवधू होने की सी प्रतीति में बैठी थी। किसी लम्बे स्वप्न-दृश्य में खोई-सी, पलंग की पाटी पर पिंडलियां उघारे, पांव झुलाए बैठी थी। रेवाचरन को लगा था, जैसे किसी मायालोक में पहुंच गए हैं और भावुकता-वश अनुराग के साथ लीला बहू की एड़ी-पिंडलियों को ही सुरसुराना शुरू कर दिया। मगर परपुरुष के स्पर्श से चौंकती-सी लीलावती बहू ने अपने पांव ऐसे समेट लिए, जैसे सिसून (बिच्छू घास) लग गई हो। जमीन पर उतरकर, फर्श पर बेर-बेर माथा टेककर, एक अजीब विरक्ति और सूखी आवाज में कुनमुनाई थी, 'पाप छिमा, पाप छिमा!'

और रेवा को लगा कि उनकी प्रणयाकुल लाजवन्ती जैसी भावुकता को किसीने सख्त पत्थर के नीचे दबा दिया है। उस एक क्षण की विरक्ति, एक क्षण की कटु अनुभूति लौकी लता जैसी बढ़ती, धीरे-धीरे कहां पहुंच गई। फागुन की पिगली लगन-चन्द्रिका में पड़ी भांवर-ग्रन्थि आषाढ़ की

हरिशयनी एकादशी तक अनखुली ही रह गई। न कभी लीलावती बौराणी ने मनुहार की और न रेवाचरन के मन में लीलावती बौराणी को स्पर्श करने की ललक जागी।

समय को तो बीतना था। बीतता ही जाता था। सास-बहू में अपनापा हो गया था। संयोग से लीलावती की सौतेली सासू इलावती भी दिवान-खानदान के विशाल वट-वृक्ष से एक उपजड़ी जैसी फूटी हुई थी, सो धरम-पुण्य के कामों में दोनों का चित्त अच्छा रमता था। सोमवार के सन्तति-सम्पत्ति और सौभाग्य देने वाले व्रत से लेकर, पुत्रदा-कामदा-पापांकुशा-हरिशयनी एकादशियों के उपवास और धन त्रयोदशी, गणेश चतुर्थी, सकष्टा चतुर्थी, अनन्त चतुर्थी, जया पंचमी, विष्णु सप्तमी तथा रोहिणी-नन्दिनी आदि इतने पर्व पड़ते थे कि व्रत-नेम निभाने में ही अधिकांश समय बीत जाता। बाकी बचा समय घर-गृहस्थी के छोटे-मोटे कामों में हाथ लगाते-लगाते कट जाता। लीलावती कोशिश करके तो सामने आती ही नहीं थी। इतना वह जरूर मानती थी कि जहां गृहस्थ-पथ में पांव पड़ गए हैं तो एक सेज की नींद भी झेलनी ही पड़ती है, मगर ऐसी बेहया, बेशरम औरत का तो मुंह नहीं देखना चाहिए, जो मिरासिनी की तरह निर्लज्ज होकर 'आ सैंया, मेरी सेज सो' कहे।···हिन्दू नारी का असली पातिव्रत तो धरम-नेम निभाने में है। व्रत-उपवास-पूजन-कीर्तन से इहलोक-परलोक दोनों सुधरते हैं। ईश्वर-भक्ति भी हो जाती है। पुरुष-स्त्री सम्बन्ध तो सन्तानोत्पत्ति का निमित्त बनाया है उन्होंने। पति और सन्तति के लिए लम्बी आयु और सुख-सम्पत्ति के लिए व्रत-नियम-उपवास की शास्त्रनिहित परम्परा में ही स्त्री की मुक्ति है—यही मायके में सीखा था, यही इलावती सासूजी सिखाती थीं। हिन्दू नारी का जीवन तो तप-स्विनी का जीवन है। उसे तो अपनी कुल-परम्परा की लाज रखनी पड़ती है। पति को सुखी बनाने के लिए भरी पूरी गृहस्थी में संन्यासिनी के जैसा तापसी जीवन बिताना पड़ता है। पति के साथ छिनालों की तरह मस्ती अठखेली करने और गोपियों की जैसी रासलीला रचाने का बेहयापन उसमें नहीं होना चाहिए।

ऐसी ऊंची-ऊंची मर्यादाएं और उत्तम संस्कार लेकर लीलावती घर-गृहस्थी के पथ पर पांव धरे थे, तो व्रत-नेम निभाते-निभाते चौमासे की हरिशयनी एकादशी आ गई, मगर कभी पति की सेज पर जरा प्रफुल्ल चित्त से, प्यार-मनुहार करते हुए बैठने को नहीं मिला। रेवाचरन के दुकान से लौटते-लौटते तक सास-बहू तो कभी-कभी रघुनाथ मंदिर, खटनरा मठ और पाताल देवी के अखंड कीर्तनों में से ही नहीं लौट पाती थीं और लौटीं तो फिर कुछ समय पंचामृत बांटने में लगता था और कुछ रसोई संभालने में। सास-बहू को देर होती थी लौटने में, तो शारदाचरण रसोई का काम-काज निवटा रखते थे, मगर रेवा की भूख वृद्ध पिता को पसीने से लथपथ देह को देखते ही मंद पड़ जाती थी।

उस दिन हरिशयनी एकादशी थी। रघुनाथ मन्दिर में हरिपुराण का वाचन हो रहा था। भक्ति-सागर में डूबा चित्त संसार-सागर में जल्दी कहां उतरता है? लौटते-लौटते गिरजे की घड़ी के बारह ठनाके पड़ चुके थे। इलावती सासू की आत्मा भक्ति-सुख से गद्गद हो रही थी, 'बहू, परमेश्वर की हरिकथा और कीर्तन का रस भी अनन्त है! अहा रे, आत्मा छलछल डूब जाती है! ले, गिरजे की घड़ी में बारह के ठनाके पड़ गए, मगर मेरी आत्मा तो अभी तक 'ओम् जै जगदीश हरे, प्रभु जै जगदीश हरे' कीर्तन की गंगोत्तरी में ही डूबी है।···अब तो रेवा भी लौट के आ गया होगा। बल्कि बाप ने पका रखा होगा, खा-पीके सो भी गया होगा। आजकल तो लीलू, घोर कलजुग लग गया है। पहले के पति परमेश्वर लोग जितनी ज्यादा ईश्वर-भक्ति और साधु-संन्यासियों की संगति करने वाली पतिव्रता नारी घर में होगी, उतने आनन्दमय रहते थे।···मगर आजकल के लौंडे-लबारे खसम तो 'देवता की मूरत को मार ठोकर, मेरी टांगों की मालिश कर' कहने वाले हैं। रेवा का चित्त भी कुछ चलायमान किस्म का है···कौन जानता है, मेरे हरीश-दिनेश की बहुएं कैसी आएंगी!'

लछमेश्वर के मोड़ तक पहुंचती-पहुंचती लीलावती के पांव और भी धीमे पड़ने लग गए, 'छि: हाड़ी, मां, आजकल के ब्राह्मण भी चूड़ी-चमारों की जैसी चटोर-छिछोर आदतें कहां से सीख आते होंगे! अब तुमको क्या बताऊं, मां, पहले-पहले ही दिन वे मेरे पांवों पर फिरंगियों के जैसे

टोटके करने लगे। कितना बड़ा पाप लगा मुझको! लगातार तीन दिन तक उपवास रखा मैंने। अब आजकल तो अपने कमरे में जरा शान्त चित्त से पड़े रहते हैं।'

इलावती मामू चौंकी। पहले मन ही मन कुछ बड़बड़ाई, फिर अर्थ-पूर्ण स्वर मे बोली, 'लीलू बहू, जहा खसम पर आ करके शान्त चित्त से सोने लगे, तो फिर उसका भरोसा नहीं करना चाहिए। जंगल में भर पेट शिकार का भोग लगाकर लौटने वाला बाघ गुफा के अन्दर पहुंचते ही शान्तचित्त मे अचेत सो जाता है। समझ रही है कि नही ?'

'इसीलिए तो और भी घिना जाता है चित्त!' लीलावती बौरानी पिच्च-पिच्च थूकने लगी, "पांवों की पिंडलियां दबवाने का हुनर अपने-आप ही तो आ नही गया होगा, क्यों मा ? इन्होंने बारात की रात भी जैसा छिछोरपना किया था, मैं ही जानती हू। छिः-छिः, औरो की जूठी देह से किसका चित्त नही घिना जाएगा! हमारे कुल मे तो मरद लोग पिशाब बैठने पर भी जल से अंग शुद्ध करते हैं। मेरी घर-गृहस्थी का संभलना तो कठिन ही दिखता है, मा! उनके और मेरे सस्कारों मे प्रेम-सागर और दुर्गा सप्तशती जितना फरक दिखाई देता है। किसी ऐसे ही कटुवे ओछे खानदान से आई होती, तो निभा भी लेती। हमारे कुल में तो ऐसा छिछोरपना चलता नहीं। हम लोग आठ भाई-बहन हैं, मगर कभी हम लोगों ने अपनी मां को मुंह खोलकर हसते-बोलते नहीं देखा होगा बाबू से।'

'द, बहू, पहले के तो सतजुगी पुरुष लोग ठहरे। नारी को साक्षात् लक्ष्मी-सरस्वती का सरूप मानने वाले ठहरे। तभी सुहागी संततिया भी जनमती थी। अब जैसा तुम्हारा ऊंचा कुल था, जैसे जोशी समधीजी साधु प्रकृति के पुरुष थे, ऐसी ही सात्विकवृत्ति की सन्ततिया भी जनमीं। अरे, संतति कोई हा-हा-ही-ही करके खसम के साथ हुड़दंगनियों की तरह नाचने-कूदने से थोड़ी ही जनमती है!' इलावती सासू का ललाट म्यूनिसिपैलिटी की लालटेन के प्रकाश में चमचमा उठा, 'तूने तो देखा ही होगा, हमारे ही पड़ोस के मुकुन्दर पाडे दिन-रात अपनी बौरानी के आंचल मे चूहेदानी के चूहा जैसा पड़ा रहता है मगर आज तक बाप के

लट्ठों को फूल-फल नहीं लगे। जोशी समधी का पवित्र चित्त ठहरा, सात्विकी देह ठहरी। ले, मैया, हीरेमोती। आठ भाई-बहनों की जोड़ी जुड़ गई। हमारे पांडेजी भी बड़े भक्त किस्म के आदमी ठहरे। पूजा-पाठ, करम-कांडों में ही उनकी आत्मा रमी हुई रहती है, मगर सत्त का बीज सात हाथ गहरे गड्डे में भी पनप सकता है। जब छोटा दिनेश हुआ, तो इनको चौवन बरस पूरे हो चुके थे!'

लैंपपोस्ट के बायें पार्श्व से ही, गाड़ी की सड़क से नीचे को सड़क फट गई है। घर की खिड़की पर जलती हुई छोटी लालटेन दिखाई दे रही थी। इलावती सासू बोलीं, 'देख ले, तेरे बड़बाज्यू (ससुरजी) अभी तक पोथी बांचने में लगे हुए होंगे। ऐसा रेवा को भी खिला दिया होगा, मगर खुद अभी भूखे ही होंगे। ऐसा सात्विकी पति भी पूरब जनम के बड़े पुण्यों से ही प्राप्त होता है। आजकल के लौंडे-लबारे तो···मुझे तो लगता है, आजकल रेवा कुछ लगाने-वगाने लगा है?'

सास की वेधक नजर लीला बहू के सारे वाक्संयम को तीर की तरह पार कर गई। हालांकि वह यह बात अभी बताना चाहती नहीं थी, लेकिन फूट-फूटकर रोते हुए बताया कि अक्सर ही शराब पीकर लौटते हैं।

"छिः, छिः, छिः···" कहते हुए इलावती सासू सड़क के बिल्कुल किनारे चली गई और वहां से उनके जोरों से थूकने की आवाज लीलावती को साफ-साफ सुनाई दे गई और वह फिर रोने लगी।

रेवाचरण की स्मृति में अतीत की असंतोष-भरी गृहस्थी के पिछले कई वर्ष एकसाथ उभर आए। हरिशयनी एकादशी की रात तक एकसाथ बिछी हुई दोनों चारपाइयां अलग-अलग ठौर चली गई थीं। तब से आज तक ज्यादातर अलग ही रहीं। सवेरे घर जल्दी छोड़ना शुरू कर दिया और रात को कहीं होटल में ही खा-पीकर, सिनेमा देखकर या ताश-शतरंज खेलकर ऐसी वेला लौटना शुरू कर दिया जब कि सास-बहू की जोड़ी अपनी पूजा-अर्चना और चर्चा-कुचर्चा के नित्य-कर्मादि से निबटकर सो चुकी होती। पूजा वाले कमरे की खिड़की से घायल पंछी जैसी उड़ती-उड़ती, कभी-कभी, शारदाचरणजी की व्यथित वाणी सुनाई दे जाती: 'हे राम, श्रीराम! हे राम, श्रीराम!'

१३

लगातार सात-आठ दिनों तक चारुचन्दर जी की दुकान के दरवाजे बन्द रहे, तो उनको और श्यामा को लेकर होने वाली चर्चाओं के जैसे पंख खुल गए। सच्ची-झूठी अफवाहें अलमोड़ा के मोहल्ले-मोहल्ले में ऐसे मंडराने लग गईं, जैसे कोहरा भर गया हो।

अफवाहों की दस्तकों से दुकान के बंद दरवाजों का रहस्य कुछ इस तरह खुला कि लोगों में सनसनी-सी फैल गई। 'जो, भैया, आखिर-आखिर ब्राह्मण कुल का सूरज कीचड़ में डूब ही गया।' यह चर्चा थी कि आजकल श्यामा मिरासिन ने अपने ब्याहते को छोड़कर, किसी दूसरे को अपने घर बिठा लिया है। सत्तार मियां इतना ही सुराग पाकर जैसे बंद दरवाजों का रहस्य पा गए और शेरवानी-पायजामा डालकर, बिना किसी से कुछ कहे-बताए, नंदा देवी वाली सीढ़ियों पर हो लिए। गिरजाघर वाले दोराहों तक काफी धीमे कदमों से चलते रहे, जैसे यों ही शाम के वक्त हवाखोरी को निकले हों। रशीदा बेगम के 'ब्राइटिंग कार्नर' वाली कोठी की तरफ रुख किए नामी-गिरामी वकील कल्याण ठाकुर सामने से दिखे और 'कहिए, सत्तार साहब, किधर चली सवारी!' का जवाब, 'राम-राम ठाकुर साहब, कहिए, खैरियत तो है। बस, यों ही जरा टहलने निकल आया।' में देते हुए, मोड़ कटते ही—सत्तार मियां ने अपने कदमों को तेज कर लिया।

जेल वाली चुंगी पार करते-करते सत्तार मियां ने सामने पूर्व की ओर देखा। दूर-दूर से दिखने वाली जालना श्रेणियां सूर्य के ढल चुकने बाद के धुंधलके में डूबने लगी थीं, जैसे समुद्र में पालदार जहाज लंगर डाले पड़े हों।

जलडिग्गी के पास वाली जमीन तब खाली थी। शाम के ...

सड़क की वाईं ओर थोड़ी-सी ऊंचाई पर खेल का छोटा-सा मैदान था। कुछ बच्चे वापसी के लिए बिखर रहे थे। सयानों से पूछना ठीक न होगा, यह सोचकर एक लड़के को अकेला पाते ही, सत्तार मियां ने पूछ लिया, "क्यों बेटे, यहां देवाल में कहीं श्यामा मिरासिन का डेरा जानते हो ?" लड़के का चेहरा फुटबाल खेलने में सुर्ख हो आया था। संयोग था कि उसे पता था। पूछा, "आप कौन वाले डेरे के बारे में पूछना चाहते हैं—नये या पुराने…"

"जहां भी वो आजकल रहती हों।" सत्तार मियां जल्दी पता जानना चाहते थे। कहीं यह लड़का उन्हें भी कोई 'आशिक' न समझ बैठे।

लड़के ने मुंह से बोलकर और हाथ के संकेतों से जो ठिकाना बताया, सत्तार मियां ने समझ लिया और 'अच्छा, बेटे, जीते रहो।' कहते हुए आगे निकल गए। मुख्य सड़क छोड़कर, चीड़ों की कतार के बीच से छड़ी टेक-कर गुजरते हुए सत्तार मियां दरबारी नगर के नजदीक पहुंचे ही थे कि दरबारी नगर से थोड़ा हटकर बने उस छोटे-से मकान पर उनकी नजर बाज की तरह पहुंच गई। पश्चिमी खिड़की में पड़ा गाढ़े पीले रंग का परदा दूर से ही दिख रहा था। कमरे में रोशनी की जा चुकी थी।

सत्तार मियां को लगा कि कारखाना बाजार से यहां तक का लम्बा फासला आसानी से तय हो गया, यहां पर का मुश्किल है। कुल जमा चंद कदमों की दूरी पर मकान खड़ा था, जैसे सत्तार मियां से दूपरदू भिड़ने की तैयारी में खड़ा कोई पहलवान हो। पहली बात तो यह है कि किसी आदमी की जिंदगी के इतने नाजुक मोड़ पर उसके आमने-सामने होना ही एक टेढ़ा काम है। टेढ़ा और तकलीफदेह। रेवाचरन की जो इस दौर में मनोदशा होगी, उसको पूरी तौर पर समझे बिना इस जंगल की आग में हाथ देना ठीक नहीं। जब सिर्फ दोस्ती के हक में सत्तार मियां के पांवों के नीचे की जमीन खिसकी जा रही है कि पानी सिर से ऊपर पहुंच गया होगा, तो इस बित्ते-भर के शहर में जिंदगी गुजारना कितना मुश्किल हो जाएगा। रेवाचरन पंडित का—ऐसे में ऐन रेवाचरन के ऊपर भी तो कुछ बीतती होगी ?

गले में कुछ खुश्की-सी महसूस हुई। गले को हाथों से दाबकर, दबी

हुई खांसी खांसने के बाद, सत्तार मियां आखिर-आखिर फिर कुछ तेज कदम उठाते उस छोटे-से आगन मे जा पहुंचे। देखा कि रोशनी दोतल्ले पर है, नीचे की मंजिल में नही।

यह सिर्फ दो कमरों का था। नीचे रसोईघर, ऊपर रिहायशी कमरा।

सत्तार मिया ने पहले तो सोचा कि अचानक खासी आ जाने की सी सावधानी के साथ खासकर, सूचना पहुचाए। बाहर आगन में अपनी उपस्थिति खुद उन्हें गलत लग रही थी। रेवाचरन बहुत जज्बाती हैं, यह अहसास उन्हे था। थोडी देर द्विविधा में रहने के बाद, आखिर जी कड़ा करके उन्होने बंद दरवाजे पर दस्तक दे ही दी।

खिड़की से श्यामा ने झांका। सत्तार मियां से उसकी नजर मिली, लेकिन जब तक सत्तार मिया मुह खोलें, वह तेजी से पीछे घूम गई, "गुसाई, आपकी दुकान के सामने वाले मिया साहब मालूम पड़ते हैं, ठीक से उजाला तो नहीं था···"

"वही होंगे। इतने सलीके से दस्तक देने वाला हाथ किसी हिन्दू का नही हो सकता।" कहकर रेवाचरन कुछ क्षणो को चुप लगा गए। फिर काफी दबी आवाज मे बोले, "सत्तार मिया का यह पहुच जाना ठीक नही हुआ। खैर, बुला लो ऊपर। कलेजी कुछ और बाकी है, या नही?'

"है, अभी लाती हूं।" कहती हुई श्यामा दरवाजा खोलने के लिए नीचे उतर गई।

रेवाचरन के जोर देने पर, सत्तार मिया ने आखिर गिलास हाथ में ले लिया। सोचा कि इसके सहारे बात चलाने की सहूलियत तो हो जाएगी। छोटी-सी मेज पर एक तश्तरी और एक गिलास की मौजूदगी और श्यामा के चेहरे पर की नामालूम-सी सुर्खी से उनकी अनुभवी आखो ने इतना अंदाजा तो लगा ही लिया था कि दोनों साथ-साथ पी रहे होंगे। एक नजर पूरे कमरे मे परिंदे की तरह घूम जाने के बाद, सत्तार मियां कुछ कहने को हुए और गौर से श्यामा को देखा, तो वह धीमे से बोली, "आप लोगो को कुछ ज्यादा निजू बातें करनी हों, तो मैं नीचे चली जाऊं।"

बात खत्म करने के साथ-साथ, एक विषाद-भरी मुस्कराहट उसके पूरे चेहरे पर कौंध गई।

"नहीं, बहन ! जो कुछ मुझे कहना है—तुम्हारी मौजूदगी में ही कहूंगा। ये तो तुम भी जानती होगी—सत्तार मियां अपने बातूनीपन के लिए बदनाम हैं, मगर यकीन जानो, हमें कुछ सूझ नहीं रहा कि हमें क्या कहना है, क्या कहना चाहिए और कि आखिर हम यहां चले आने की गुस्ताखी या बदतमीजी या कि बेउसूली—जो तुम कह लो, अपने बेवक्त और बेवजह चले आने की कुल जमा वजह हमें यह सूझती है कि दोस्ती का रिश्ता भी आशिकी-माशूकी के रिश्ते से कम नहीं। ये रिश्ता भी रात-बेरात वक्त-बेवक्त कुछ देखता नहीं।"

"आपको इतनी लम्बी सफाई देने की जरूरत नहीं, सत्तार भाई ! आपकी दोस्ती का हक तो ये है कि मंदिर में पूजा करते बैठा होऊं, तो बिना जूता उतारे आइए और कान पकड़कर बाहर खींच लीजिए…मगर कुछ मोड़ जिंदगी में ऐसे आ जाते हैं सत्तार भाई—आदमी का अपने ऊपर कोई वश रह नहीं जाता। अपनी हकीवत मुझे भी पता है और आपको बताऊं कि अंजाम भी—और मैं जान रहा हूं कि आप इसी से आगाह करने यहां तक आए हैं और मुझे इस बात का भी इतमीनान है कि आप दोस्त से मिलने के शौक में नहीं, उसकी जोखिम की तकलीफ की मार में यहां तक आ पहुंचे हैं।…मगर खुदा के लिए, इस वक्त मेरी इज्जत रख लीजिए।…और हर्गिज ये न कहिएगा कि 'चलो, पंडित, तुम्हें जरा बाहर तक टहला लाएं।'"

सत्तार मियां जहां के तहां थमे रह गए।

"इंसान के जज्बातों की दुनिया बहुत बड़ी होती है, पंडित ! उसमें बाहर से दखल देना कोई मायने रखता नहीं। जज्बात का नशा तूफान की तरह आता है इंसान पर…और बुरा न मानो, तो कहूं कि तूफान की ही तरह उतरता भी है।" एक घूंट भरने के बाद, सत्तार मियां फिर बोले, "मैं हर्गिज न आता। इस तरह के आने की कोई अकीयत नहीं होती। …मगर हुआ ये कि जब नजर डालूं, तुम्हारी दुकान के तख्ते आपस में जुड़े दिखाई दें, जैसे ताकयामत जुदा न होने के अंदाज में माशूक गले से

लगे पड़े हों।···और ये तो इस वक्त अब मैं खुद और ज्यादा शिद्दत से महसूस कर रहा हूं कि जितने दिन तुम शहर दुकान पर नहीं आए हो, अच्छे-बुरे को सोचा ही होगा और खूब सोचा होगा। फिर भी अब यहां से जो मैं मलाल लेके लौटूंगा नहीं कि अरे मियां, तुम अपना कहना-सुनना तो कर जाते।···और कहना हमें यही है, पंडितजी कि इस समय तो आपकी आंख में मुहब्बत का परदा पड़ा हुआ है। ये जो तुम्हारे ऐन सिर के ऊपर आशिकों के सरताज उमरखैयाम साहब की तस्वीर टंगी है ना—और उनका खाली पैमाना भरती साकी? औरत में हुस्न हो और हो हुनर—सारे जन्नत उसके कदमों पर फैला देती है, मगर हकीकतों की दुनिया बहुत छोटी ही सही, आखिरी और असली वापसी आदमी की वही होती है। जिस जज्वानी दुनिया में आप आ पड़े हो, एक दिन वक्त के बीतने के साथ जो भर परदे के हटते ही आपके जेहन में, आपके सीने में एक नया दर्द उभरना शुरू होगा। इस बात का दर्द कि जात-बिरादरी से कटकर आप एक बहुत बड़ी गलती कर बैठे हैं।···और, बहन श्यामा, इतना मैं पंडत जी के और तेरे रूबरू ही कहे दूं, अपनी कौम और अपने फिरके की जिस बुलंदी को आज पण्डत जी ने तेरी जिस्मानी मोहब्बत के सुरूर में डुबो दिया है, वह बहुत जल्दी ही फिर तुम दोनों के बीच में दीवार बनकर खड़ी हो जाएगी। मेरे एक जिगरी दोस्त थे मियां मुजीब। मयकशी के ऐसे दीवाने कि होश में आना गुनाह समझें। एक दिन शराब से लबालब पैमाना बोतल से टकराकर चटक गया। हम वहीं पर थे। कहा, 'मुजीब मियां, पैमाना बदल दीजिए।' मगर मुजीब साहब को तो पैमाना की दरारों से रिसती शराब का ज्यादा मलाल था। एक सांस में पैमाना खाली कर गए। और यह भी होश नहीं कि शराब के घूंटों के साथ शीशे का नुकीला टुकड़ा भी हलक में उतार लिया है।···मगर तू ही बता, श्यामा बहन, कि कहीं हलक में उतरा कांच का टुकड़ा पच सकता है?"

सत्तार मियां ने अपनी बात खत्म करते हुए, जैसी आस से देखा, वह कुछ हिचकिचाई भी थी, मगर रेवाचरनजी ने सत्तार मियां को वापस फिरा ही दिया। बोले, "सत्तार भाई, जी बहुत दुखा हुआ है। जो कुछ भी कर बैठा हूं, बहुत-सी मजबूरियों के बाद और सारे नतीजे सोच लेने

के बाद ही किया है। अब अगर आप जैसे दोस्त भी मेरी कमअक्ली का और ज्यादा अहसास कराने की कोशिश करेंगे, तो शायद, जी नहीं सकूंगा। मेरी बदनसीबी गुस्से की नहीं, रहम की मोहताज हो गई, सत्तार भाई !"

और सत्तार मियां के हाथों को अपने हाथों में लेते-लेते हुए रेवाचरन बच्चों की तरह बिलख उठे। सत्तार मियां की आंखें भी डबडबा आईं, "मत रो, मेरे अजीब भाई ! छोड़ अब सब कुछ उस अलना की मर्जी के भरोसे।...बस, एक बात मेरी गांठ बांध लो, पण्डत भाई ! जी छोटा करने से हमेशा गमगीनी और पस्ती बनी रहेगी। दिल मजबूत करने से ही गम घटेगा। खुश रहना चाहो, तो दिल से यह ख्याल ही सुसरा निकालकर फेंक देना कि तुम ऊंचे ब्राह्मन हो और ये छोटी जात की है। गरचे कि अब ब्राह्मन बिरादरी में बने रहने का कोई रास्ता नहीं। ऊंचाई पर से लुढ़का हुआ पत्थर खुद ब खुद पलटकर अपनी पिछली ऊंचाई तक वापस नहीं लौट सकता।...और ऊंची हिन्दू कौमों का यह उसूल ही नहीं, बिरादर, कि अपने गिरे हुए पाये को उठाकर अपने साथ जोड़ लें। हां, नीच कौम तो बड़ी ठहरान वाली बहती धरती जैसी हुआ करती है। ऊंची कौम और नीची कौम—आप हिन्दू लोगों ने तो इन दोनों में छत की ऊंचाई और गड्ढे की गहराई के जितना फ़र्क रखा हुआ है।...खैर, खुदा जाने, कुदरत को मंजूर क्या है। आखिरी बात और कहे जाऊं, अपना रोजगार-धंधा चौपट मत करो। पैसों के मोहताज की जिन्दगी को सोसाइटी और जात-बिरादरी में और ज्यादा दबोचा जाता है। किसी के आगे हाथ फैलाकर कुछ लेने की नौबत न आने दोगे—भाई मेरे, तो जनाबेआला सरोसतीकुमार जी की तरह खुशहाल जिन्दगी बसर कर सकोगे। सरोसती साहब की खुशहाली का सबसे बड़ा राज यही रहा कि बस, सैमुअल बने, तो पूरे सैमुअल साहब बन गए। पन्तनामा तो एकदम ऐसे ही रख छोड़ा, जैसे अरबी घोड़े के पीछे की पूंछ सिर्फ मच्छर उड़ाने के काम की रह जाती है।"

सत्तार मियां की बातों से रेवाचरन कुछ आश्वस्त तो हुए, लेकिन लगातार यह अहसास गहरा ही होता गया कि बाजी हाथ से, शायद, निकल

चुकी।

हालांकि सत्तार मियां लगातार लम्बी और फैसलाकुन किस्म की बातचीत की सी तैयारी में दिख रहे थे, लेकिन अचानक ही उन्होंने एक लम्बा घूंट भरकर गिलास खाली किया। कलेजी का एक टुकड़ा मुंह में भरा। एक तरफ रखी टोपी और छड़ी उठाई और तुरत उठ खड़े हुए, "अच्छा, भई, मैं चलूं। मेरी ये बात फिलहाल जरूर ध्यान में रखना कि रोजगार का सिलसिला न गड़बड़ाए। आप तो खुद जानते हो कि सीजर और पासिंग शो की एजेंसी के ख्वाहिशमंदों की गिनती कम नहीं। मुंह पर मीठी हांकने वाले हों लिख मारेंगे कि दुकान बंद पड़ी रहती है और खरीदार मुंह लटकाए वापस जाते हैं। बहते सोते और भरे तालाब के बीच के फर्क को दानिशमंद आदमी भूले नहीं, तभी ठीक रहता है। अच्छा, सलाम, कल दुकान पर मुलाकात होगी।...अच्छा, श्यामा, खुदा तुम्हें सलामत रखें।"

"मैं तो आपके लिए पान लगाने ही वाली थी। जरा-सा रुकें..."

"बस, शुक्रिया, फिर किसी दिन। लौटते में हवलदार के यहां ले लूंगा।" कहते हुए सत्तार मियां इस तरह सीढ़ियों की ओर बढ़ गए कि श्यामा को इसके अलावा और कोई गुंजाइश दिखाई नहीं दी कि सीढ़ियों पर रोशनी कर दी जाए।

दरवाजे की साकल चढ़ाकर, श्यामा लौट आई। बोली, "खैर, ये बात तो सत्तार मियां ठीक ही कहते हैं, गुसाईं, कि रोजगार हाथ से नहीं जाना चाहिए। कल को चारों तरफ से बदी मेरे सिर पड़ेगी। मैं तो कहती रही हूं कि ये तो एक सराय है, जब तब ठहरना हो गया।"

"अब इस वक्त तुम खामोश रहो, श्यामा! सत्तार मियां के कदमों की आवाज अभी तक मेरे कानों में बज रही है। मैं तो यहां तक डरने लगा हूं कि कहीं किसी दिन बाबू न आ धमकें। खैर, छोड़ो। देखेंगे। इस वक्त तो तू कोई प्यारी-सी गजल सुना देती।"

"बिना साज..."

"ना, इस वक्त साज की जरूरत ही नहीं। सिर्फ मैं सुनना चाहता हूं और चाहता हूं, और मेरे अलावा इस कमरे में टंगी तस्वीरें तक न

सुनें।" कहते हुए रेवाचरन सहारा लेकर, लेट गए, "खिड़की बन्द कर दो।"

श्यामा खाने के बारे में पूछ लेना चाहती थी, लेकिन रेवाचरन आंखें मूंदे हुए कुछ इतने उदास दिख रहे थे कि उसे लगा, साफ मना कर देंगे। पान का बीड़ा उसने धीरे से उनके होंठों की तरफ बढ़ा दिया और खिड़की के पल्ले बंद कर, कपड़े सलीके से समेटती, रेवाचरन के पांवों के पास बैठ गई। धीमे-धीमे पांव दबाते हुए, उसने गुनगुनाकर, धुन बांधने की कोशिश की और फिर निहायत संतुलित आवाज में बहादुर शाह 'जफर' की गजल शुरू कर दी :

"मुझे मत रोको, मुझे यार के घर जाने दो—
मिस्ले परवाना मुझे शमा पर जल जाने दो—
एक शबे-वस्ल से हम यार के महरूम रहे—
आज की शब तो ये अरमान निकल जाने दो।
नीम-बिस्मिल मुझे क्यों छोड़ चले जाते हो—
अपने आशिक का जरा दम तो निकल जाने दो।"

रेवाचरन, शायद, सो चुके थे। फिर भी निहायत धीमी आवाज में 'जफर' की दूसरी गजल के ये बंद श्यामा गुनगुनाती गई :

"मुझको समझाएंगे आप, मेरे दिले-दीवाना को—
हजरते-नासेह से पूछिए किसे समझाएंगे आप।"

रेवाचरन को गहरी नींद में देखकर, श्यामा ने भी अपनी साड़ी उतारकर, खूंटी पर टांग दिया और उनकी बाईं ओर के खाली हिस्से में खुद भी लेट गई।